

पृष्ठ संख्या

खण्ड 2 रघुवंशम् तथा कुमारसंभवम्	
इकाई 6 कालिदास के महाकाव्यों का परिचय	97
इकाई 7 रघुवंशम् (प्रथम सर्ग)श्लोक 1 –10	133
इकाई 8 रघुवंशम् (प्रथम सर्ग)श्लोक 11 –25	147
इकाई 9 कुमारसंभवम् (पञ्चम सर्ग)श्लोक 1–10	163
इकाई 10 कुमारसंभवम् (पञ्चम सर्ग)श्लोक 11–20	172



इकाई 6 कालिदास के महाकाव्यों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

- 6.0 उद्देश्य
- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 महाकवि कालिदास का परिचय
 - 6.2.1 महाकवि कालिदास का जन्मस्थान
 - 6.2.2 महाकवि कालिदास की प्रशस्तियाँ
 - 6.2.3 महाकवि कालिदास का वैशिष्ट्य
- 6.3 रघुवंश महाकाव्य का परिचय
 - 6.3.1 रघुवंश महाकाव्य नाम की सार्थकता तथा रघुवंश की वंश –परम्परा
 - 6.3.2 रघुवंश की प्रमुख सूक्तियाँ
 - 6.3.3 रघुवंश का कथासार
 - 6.3.4 रघुवंश महाकाव्य के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण
- 6.4 कुमारसम्भव महाकाव्य का परिचय
 - 6.4.1 पार्वती की तपस्या का वर्णन
 - 6.4.2 कुमारसम्भव (पंचम सर्ग) के काव्यांश
 - 6.4.3 कुमारसम्भव (पंचम सर्ग) के काव्यांश
- 6.5 सारांश
- 6.6 शब्दावली
- 6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 6.8 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप :

- कालिदास के महाकाव्यों की विशिष्टता से परिचित हो सकेंगे ।
- रघुवंश की वंश परम्परा, प्रमुख सूक्तियों ,कथासार और पात्रों के चरित्र–चित्रण को जानेंगे ।
- कुमारसम्भव के महत्वपूर्ण पंचम सर्ग के काव्यांश का अध्ययन कर सार ग्रहण करने में समर्थ होंगे ।
- महाकवि कालिदास की लेखन शैली की विशिष्टता से परिचित हो सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य को मुख्यतया दो भागों में विभाजित किया गया है— (1) वैदिक साहित्य (2) लौकिकसाहित्य। वैदिक साहित्य में वेद, वेदांग, उपनिषद्, पुराण, ब्राह्मण, आरण्यक आदि परिगणित होते हैं तथा लौकिक साहित्य का प्रारम्भ आदिकवि वाल्मीकि रचित रामायण तथा महर्षि वेदव्यास लिखित महाभारत से माना जाता है। अद्यावधि ये

दोनों रचनायें भारतीय संस्कृति की आदर्शभूत रही हैं। इनका कथानक, शैली तथा काव्य की दृष्टि से इनका रचना संसार इतना व्यापक है कि इनसे प्रेरणा लेकर सैकड़ों परवर्ती रचनाकारों ने अपने काव्य तथा साहित्य की रचना की तथा आज भी कर रहे हैं। वाल्मीकि और व्यास के बाद अपने साहित्य से भारतीय ज्ञानराशि को समृद्ध करने वाले कृतिकारों में कालिदास अनन्य हैं। इस इकाई में आप कालिदास रचित महाकाव्यों के विषय में अध्ययन करेंगे।

6.2 महाकवि कालिदास का परिचय

कविकुलगुरु कालिदास के जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। कालिदास के वंश, माता-पिता, शिक्षा, गार्हस्थ जीवन तथा उनकी जन्मभूमि आदि के विषय में कोई साक्ष्य कालिदास के काव्यों में नहीं मिलता है। जनश्रुतियों के आधार पर परवर्ती लेखक, साहित्यकार इतिहासकार अनुमान लगाते हैं। कुछ लोग व्युत्पत्तिपरक अर्थ लगाकर कहते हैं कि कालिदास अर्थात् काली का दास, काली का सेवक।

6.2.1 महाकवि कालिदास का जन्मस्थान

महाकवि कालिदास की रचनाओं के आधार पर उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में चार मत प्रचलित हैं—

प्रथम मत — कालिदास ने रघुवंश में सुदक्षिणा को मागधी एवं दिलीप को मागधीपतिकहकर सम्बोधित किया है। इस मत के अनुसार कालिदास को मगध निवासी कहा गया है। जहाँ कहीं मगध देश की चर्चा आई है कालिदास का पक्षपात वहाँ दिखाई दे रहा है। इन्दुमती स्वयंवर में प्रत्याशी राजकुमारों में सबसे पहले मगधेश्वर को स्थान दिया है। रघुदिग्विजय के प्रसंग में मगधेश्वर की हार का वर्णन कालिदास ने टाल दिया है। मगध के प्रति विशेष स्नेह दिखाने के कारण यह मत बहुतायत प्रचलित हुआ कि कालिदास मगध निवासी हैं।

द्वितीय मत —कालिदास को बंगाल का निवासी मानता है। बंगाली लोगों का यह कथन है कि कालिदास बंगाल के निवासी थे। उनका तर्क है कि धान की खेती का जितना सुन्दर वर्णन कालिदास ने अपने काव्य में किया है वो निश्चित रूप से वहीं का निवासी कर सकता है। दूसरा नाम से भी स्पष्ट है कि कालिदास बंगाल निवासी थे। काली की पूजा विशेष रूप से बंगाल में की जाती है अतः काली का दास 'कालिदास' नाम से भी सिद्ध है कि कालिदास बंगाल के निवासी थे।

तीसरा मत —यह मत प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला का है जो कालिदास को कश्मीरनिवासी मानते हैं। मेघदूत में यक्ष का सन्देश लेकर मेघ उत्तर दिशा की ओर जाता है। भारत के नक्शे में कश्मीर की स्थिति भी उत्तर दिशा में ही है। कवि के द्वारा अत्यन्त सुन्दर रूप से वर्णित भौगोलिक स्थल कण्वाश्रम, कश्यप ऋषि का आश्रम, शचीतीर्थ, ब्रह्मसर आदि भी कश्मीर में स्थित हैं। कुछ सामाजिक रीति-रिवाजों का वर्णन कवि ने किया है जो कि कश्मीर में आज भी प्रचलित है। लोकाचार का ज्ञान उस स्थल के मूल निवासी को ही हो सकता है। अतः कश्मीर जनपद के लोग कालिदास को कश्मीर का निवासी मानते हैं।

चौथा मत —कालिदास के उज्जयिनी निवासी होने के पक्ष में है। ऋतुसंहार में मालव देश की जलवायु का वर्णन किया गया है। मेघदूत में जिन नदी, पर्वत, नगर आदि के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन मिलता है उनमें से अधिकांश मध्य भारत से सम्बन्धित हैं। मेघदूत में यक्ष के द्वारा मेघ को कहा गया कथन इसमें प्रमाण है—

“वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशा

सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः”

इस कथन से यह स्पष्ट है कि महाकवि का भौगोलिक ज्ञान व्यापक था किन्तु केवल भौगोलिक वर्णन के दक्ष प्रयोग से स्थाननिर्णय करना सौ प्रतिशत सत्य नहीं कहा जा सकता। तथापि कालगणनाकारों ने चमोली (गढ़वाल) जनपद के अन्तर्गत मन्दाकिनी के पार्श्ववर्ती सिद्धपीठ कालीमठ के निकट ग्राम कविल्ला को कालिदास का जन्म स्थान कहा है। कालिदास को गढ़वाली लोग प्रेम से बन्दरू, कालू, कालीचरण, कालिकाप्रसाद तथा कालिकादत्त आदि नामों से पुकारते थे।

6.2.2 महाकवि कालिदास की प्रशस्तियाँ

कालिदास संस्कृत साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं। कालिदास की सर्वतोमुखी प्रतिभा, उनका विशाल अनुभव संसार, उनकी भौतिकता, रचना चातुर्य, कल्पनाशीलता, प्रकृति प्रेम और प्रसादमयी वाणी पर मुग्ध होकर किसी विद्वान् ने लिखा है—

“पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।

अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनमिका सार्थवती बभूव”।।

बाणभट्ट ने कालिदास की प्रशस्ति में लिखा है—

“निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।

प्रीतिमधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जायते”।। (हर्षचरितम्-6)

जयदेव ने प्रसन्नराघवम् के प्रथम अध्याय के 22वें श्लोक में कालिदास को कविकुल का गुरु कहा है—

“कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः”।

इसके अतिरिक्त भी अन्यान्य रचनाकारों ने कालिदास की प्रशस्ति में लिखा है—

“साकूतमधुरकोमलविलासिनीकण्ठकूजितप्राये।

शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीला-कालिदासोक्तिः”।।

(गोवर्धनाचार्य, आर्यासप्तशती भू. 36)

“अस्पृष्टदोषा नलिनीव हृष्टा, हारावलीव ग्रथिता गुणौघैः।

प्रियाङ्कपालीव प्रकामहृद्या न कालिदासादपरस्य वाणी”।।

वैसे तो कालिदास का काव्यसौष्ठव अद्वितीय है तथापि उपमा अलंकार का वर्णन उनकी अपनी विशेषता है। अतः ‘उपमा कालिदासस्य’ कालिदास के लिये कही जाने वाली प्रमुख उक्ति है।

6.2.3 महाकवि कालिदास का वैशिष्ट्य

महाकवि कालिदास के काव्य आत्मानुभूति तथा सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित होते हैं। उनके काव्यों में कहीं प्रकृति का मानवीकरण तथा कहीं मानव में प्रकृति की छटा का सहज तथा जीवन्त वर्णन देखने को मिलता है। निर्जीव में सहज सजीवता को घटाना तथा सजीव में सहज निर्जीव के लक्षण घटाना कालिदास का अपना वैशिष्ट्य है।

प्रकृति वर्णन— कालिदास प्रकृति के उपासक हैं। उन्होंने प्रकृति के सुकुमार रूप को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। प्रकृति के वर्णन के लिये कालिदास ने ऋतुसंहार में सभी ऋतुओं का अलग-अलग वर्णन किया है, उनकी अन्य रचनाओं में भी प्रकृति के आन्तरिक व बाह्य स्वरूप का सूक्ष्म चित्रण प्राप्त है। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में कालिदास राजा रघु के मुख-सौन्दर्य के वर्णन के लिये प्रकृति के प्रसिद्ध उपमान चन्द्र का आश्रय लेते हैं—

“प्रसादसुमुखे तस्मिंश्चन्द्रे च विशदप्रभे।

तदा चक्षुष्मतां प्रीतिरासीत्समरसा द्वयोः”।। (रघुवंश-4/18)

चरित्र चित्रण—कालिदास अपने काव्यों में पात्रों को इतने आदर्श रूप में प्रस्तुत करते हैं कि जनसामान्य के लिये वे प्रेरणास्पद तथा अनुकरणीय बन जाते हैं। राजा का वर्णन जब कालिदास करते हैं तब राजोचित उत्तमोत्तम गुणों का आधान कालिदास के राजा पात्र में होता है। रघुवंश में दिलीप और रघु का आज्ञापालक एवं धर्मपरायण स्वरूप स्तुत्य है। रघुवंशी राजाओं के सफल चित्रण को देखकर ही आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के लक्षणमें **“एकवंशोद्भवो भूपा कुलजा बहवोऽपि वा”** का समावेश किया।

रघुवंश में रस परिपाक— रघुवंश में यदि रघु के वर्णन को प्रमुख कथा मानकर रस कानिर्णय करना हो तो वीर रस ही अंगीरस के रूप में प्राप्त है। वीर रस ही महाकाव्य में कहीं धर्मवीर, कहीं दयावीर, कहीं दानवीर और कहीं युद्धवीर के रूप में अभिव्यंजित है। नन्दिनी गौ की सेवा के प्रसंग में राजा दिलीप का वन्य सिंह के समक्ष अपने आपको समर्पित कर देना धर्मवीर तथा दयावीर का उदाहरण है।

“सत्त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।

दिनावसानोत्सुकबालवत्सां विसृज्यां धेनुरियं महर्षेः”।। (रघुवंश-2/45)

इन्द्र तथा रघु के युद्ध में युद्धवीर नायक अभिव्यंजित है।

“तथापि शास्त्रव्यवहारनिष्ठुरे विपक्षभावे चिरमस्य तस्थुषः।

तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्रगुणैर्निधीयते”।। (रघुवंश-3/62)

“असङ्गमद्रिष्वपि सारवत्तया न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम्।

अवेहि मां प्रीतमृते तुरंगमात्किमिच्छसीति स्फुटमाह वासवः”।।

(रघुवंश-3/63)

उपमा कालिदासस्य —

वैसे तो कालिदास का अलंकार सौष्टव अनन्य है। रस के अनुरूप उनकी रचनाओं में अलंकार स्वतः स्फुट होते हैं। कालिदास के काव्य को पढ़ते समय अलंकार कदापि ऐसे प्रतीत नहीं होते कि शोभावर्धन के लिये उन्हें बलात् प्रयोग में लाया गया है।

इसमें भी उपमा का वैचित्र्य तो कालिदास के काव्य में अद्भुत है यथा शिव और पार्वती परस्पर वाणी और अर्थ के समान संयुक्त हैं, नाम मात्र के लिये पृथक् हैं।

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥ (रघुवंश-1/1)

रघुवंश में नन्दिनी का अनुसरण करते हुए जब सुदक्षिणा उसके पीछे चलती है तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे श्रुति का अनुसरण करते हुए स्मृति चल रही है।

‘श्रुतेरिवार्थ स्मृतिरन्वगच्छत्।’

जिस प्रकार पिता के घर पर न होने की दशा में पुत्र आगन्तुक अतिथियों का सम्मान करता है, ठीक उसी प्रकार ऋषि के आश्रम में न होने पर वृक्ष व लतायें अतिथि की सेवा कर रहे हैं –

‘तस्यातिथीनामधुना सपर्या, स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु ॥ (रघुवंश-13/46)

अर्थान्तरन्यास का प्रयोग भी कालिदास के काव्यों में द्रष्टव्य है कुछ सूक्तियाँ जो अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में प्राप्त हैं। यथा –

प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता (कुमारसम्भवम् 5/1)

न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्षते (कुमारसम्भवम् 5/16)

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् (कुमारसम्भवम् 5/33)

न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् (कुमारसम्भवम् 5/45)

पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते (रघुवंशम् 3/62)

तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते (रघुवंशम् 11/1)

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प का चयन कीजिये—

i) कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में सुदक्षिणा को सम्बोधित किया है—

(क) मागधी

(ख) अवधी

(ग) वैदर्भी

(घ) पांचाली

ii) कालिदास को कश्मीर का निवासी मानते हैं—

(क) डॉ. विश्वेश्वर

(ख) गणपति शास्त्री

(ग) प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला

(घ) डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी

iii) ‘श्रुतेरिवार्थ स्मृतिरन्वगच्छत्’ सूक्ति है—

(क) कुमारसम्भव

(ख) रघुवंश

(ग) ऋतुसंहार

(घ) मेघदूत

2. कविकुलगुरु विलास किसे कहा गया है?

.....
.....

3. कालिदास के लिये कही जाने वाली प्रमुख उक्ति क्या है ?

.....

अभ्यास प्रश्न 1

1. महाकवि कालिदास का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
2. 'उपमा कालिदासस्य' विषय पर टिप्पणी लिखिए।

6.3 रघुवंश महाकाव्य का परिचय

रघुवंश महाकाव्य उन्नीस सर्गों में विभक्त है। इसमें 1569 श्लोक हैं। इस महाकाव्य में सूर्यवंश के 31 राजाओं के शौर्य तथा जीवन का वर्णन है। अत्यन्त प्रतापी तथा दयालु राजा मनु से लेकर परमविलासी राजा अग्निवर्ण तक की कथा रघुवंश में संकलित है। रघुवंश महाकाव्य का मूल स्रोत रामायण है किन्तु रघुवंश की कथा पद्मपुराण के अधिक समीप है। रघुवंश महाकाव्य की कथा राजा दिलीप के चरित्र-चित्रण से आरम्भ होती है। दिलीप अत्यन्त प्रतापी और पराक्रमी राजा थे किन्तु उनके कोई सन्तान नहीं थी। सन्तान प्राप्ति की कामना से वे अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ गुरु वशिष्ठ के पास जाते हैं तथा गुरुप्रवर के आदेशानुसार कामधेनु की पुत्री नन्दिनी (गौ) की सेवा का व्रत लेते हैं। राजा दिलीप पत्नी सुदक्षिणा के साथ नन्दिनी की सेवा करते हुए कई महीने व्यतीत कर देते हैं। एक दिन नन्दिनी राजा की परीक्षा लेने के उद्देश्य से पर्वत की कन्दराओं में प्रवेश कर जाती है और एक सिंह उस पर आक्रमण कर देता है। सिंह से गाय को बचाने के लिए राजा स्वयं अपनी देह सिंह को अर्पित कर देते हैं। राजा के इस त्याग से अभिभूत होकर नन्दिनी राजा को पुत्रप्राप्ति का वरदान देती है। इसके पश्चात् राजा के पराक्रम का वर्णन, राजा दिलीप के घर रघु का जन्म आदि कथाओं से सूर्यवंश आगे बढ़ता है। अन्त में सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण की कामुकता तथा विलासिता से दुःखद मृत्यु होती है। रघुवंश कालिदास की उत्कृष्ट कृति है। पद-पद पर कवि की प्रतिभा स्फुट होती है। भाव, भाषा, रस तथा कला का अनुपम उदाहरण इस महाकाव्य में द्रष्टव्य है।

6.3.1 रघुवंश महाकाव्य नाम की सार्थकता तथा रघुवंश की वंश परम्परा

रघुवंश महाकाव्य के नाम से ही स्पष्ट है कि जिस वंश में राजा रघु हुए उनके वंश का वर्णनपरक महाकाव्य है। प्रथम सर्ग के आरम्भ में रघुवंश नाम की सार्थकता सिद्ध करते हुए कालिदास स्वयं लिखते हैं—

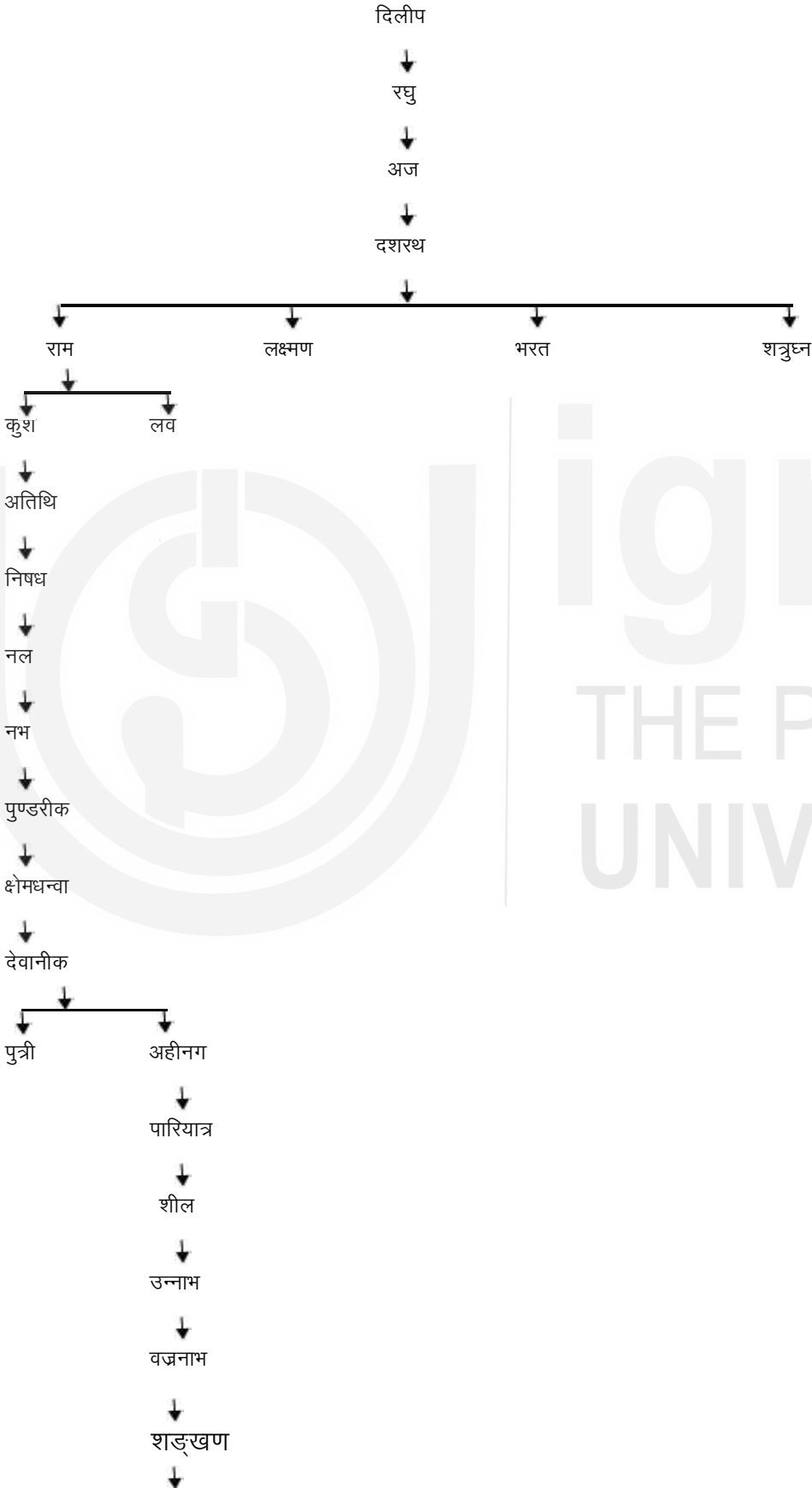
“रघूनामन्वयं वक्ष्ये”

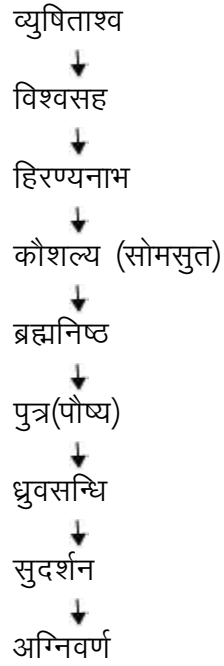
इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी स्पष्ट है— रघोः वंशः (रघु का वंश) रघूणां वंशः (रघुवंशियों का वंश), रघुवंशस्य वृत्तमस्तीत्यास्मिन् काव्ये तत् रघुवंशमिति (रघुवंश का वर्णन है जिस काव्य में वह रघुवंश महाकाव्य है), राजा दिलीप से प्रारम्भ करते हुए राजा राम का विस्तृत वर्णन है। सोलहवें सर्ग तक राम का वर्णन तथा अन्यान्य राजाओं का वर्णन संक्षेप में मिलता है। 18वें सर्ग में 21 राजाओं का उल्लेख है इस प्रकार रघुवंश में कुल 31 राजाओं का वर्णन प्राप्त है —

- (1) राजा दिलीप (2) रघु (3) अज (4) दशरथ (5) राम (6) कुश (7) अतिथि (8) निषध (9) नल (10) नभ (11) पुण्डरीक (12) क्षेमधन्वा (13) देवानीक (14) अहीनग (15) पारियात्र (16) शील (17) उन्नाभ (18) वज्रनाभ (19) शङ्खण (20) व्युषिताश्व (21) विश्वसह (22) हिरण्यनाभ (23) कौशल्य (24) ब्रह्मनिष्ठ (25) पुत्रपुष्य (26) ध्रुवसन्धि

(27) सुदर्शन (28) अग्निवर्ण। यहाँ राम के साथ लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को जोड़कर कुल-31 राजाओं का वर्णन प्राप्त है। इस वंशक्रम को अधोलिखित चार्ट से आसानी से स्मरण किया जा सकता है—

रघुवंश में वर्णित राजाओं की सूची





6.3.2 रघुवंश की प्रमुख सूक्तियाँ

महाकवियों की वाणी में कुछ विचित्र सा चमत्कार होता है जो अनायास ही आदर्श तथा प्रेरणाप्रद सूक्तियाँ तथा मुहावरे बना देता है। महाकवि कालिदास के श्लोकों में सहज चमत्कार द्रष्टव्य है। भगवती सरस्वती की असीम अनुकम्पा से जो सहज कवित्व स्फुरित होता है वह लोक के लिए सूक्तियों और मुहावरों के रूप में एक अनुकरणीय वाक्य बन जाता है। रघुवंश महाकाव्य की प्रमुख सूक्तियाँ इस प्रकार हैं—

1. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा। (रघु. 1/10)
2. सन्ततिः शुद्धवश्या हि परत्रहे च शर्मणे। (रघु. 1/69)
3. क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति। (रघु. 3/29)
4. मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्। (रघु. 7/15)
5. तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते। (रघु. 11/1)
6. पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमाशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः। (रघु. 5/16)

6.3.3 रघुवंश का कथासार

रघुवंश महाकाव्य उन्नीस सर्गों में विभक्त है। इसमें महाकाव्य के सभी लक्षण घटित होते हैं। इक्ष्वाकुवंश के महाप्रतापी राजा दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक 31 राजाओं का वर्णन इस महाकाव्य में किया गया है। रघुवंश का वर्णन वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा पद्मपुराण में प्राप्त है।

प्रथम सर्ग

महाकवि कालिदास शब्द और अर्थ के समान एकीभूत, सृष्टि के माता-पिता भगवान् शिव और पार्वती को वाणी और अर्थ की सिद्धि के लिये नमन करते हुए रघुवंश महाकाव्य का प्रारम्भ करते हैं। ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये मंगलाचरण करके स्वयं को रघुकुल जैसे महान् वंश का वर्णन करने में असमर्थ कहते हैं तथा लिखते हैं कि वाल्मीकि आदि महाकवियों ने सूर्यवंश पर काव्य की रचना करके वाणी का द्वार

खोल दिया है तभी मैं अल्पमति इस वंश का वर्णन कर पा रहा हूँ। वेदों में ऊँकार के समान इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं में सर्वप्रथम सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु हुए। मनु के वंश में प्रखर मेधा, न्यायप्रिय और दयालु राजा दिलीप हुए। राजा दिलीप न्यायप्रिय, धर्मावलम्बी तथा सच्चरित्रवान् थे किन्तु उनके कोई सन्तान नहीं थी। रानी सुदक्षिणा को लेकर आप गुरु वसिष्ठ के आश्रम पहुँचे। गुरु वसिष्ठ ने उन्हें कामधेनु की पुत्री नन्दिनी(गौ) की सेवा करने का निर्देश दिया।

जिस समय गुरु वसिष्ठ नन्दिनी की सेवा का निर्देश दे रहे थे उसी समय नन्दिनी वन से लौटकर आ गई। उसके खुर की धूल से राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा पवित्र हो गए। अपने बछड़े को देखते ही नन्दिनी के थनों से दूध बहने लगा। गुरु वसिष्ठ ने राजा दिलीप से कहा— 'राजन्'। नाम लेते ही नन्दिनी आ गई है तथा बहते दूध का दर्शन हुआ है यह अत्यन्त शुभ शकुन है, आपका मनोरथ शीघ्र पूर्ण होगा। आज से आप दोनों इसका अनुकरण करो, इसकी सेवा करो। तभी से राजा दिलीप ने गौ सेवा व्रत की प्रतिज्ञा की।

द्वितीय सर्ग

प्रातःकाल रानी सुदक्षिणा ने चन्दन व माला से नन्दिनी गौ की पूजा की और राजा दिलीप ने उसे वन में जाने के लिए खोल दिया। जिस प्रकार स्मृतियाँ, श्रुति का अनुगमन करती हैं, उसी प्रकार रानी सुदक्षिणा, नन्दिनी का अनुसरण करने लगी। इक्कीस दिन प्रातःसायं पूजा करते हुए गाय की अगुवाई करते हुए दम्पति गाय के सोने के बाद सोते तथा उसके जागने पर उसकी सेवा करते। बाईसवें दिन राजा दिलीप की परीक्षा लेने के लिये नन्दिनी पर्वत की कन्दराओं में घुस गयी और एक शरे ने उस पर आक्रमण कर दिया। राजा दिलीप ने उस शरे से आग्रह किया कि नन्दिनी को छोड़ दे और उसे खा ले। सिंह ने अनेक प्रकार से राजा को नन्दिनी की रक्षा से विमुख करने का प्रयास किया किन्तु राजा तो दृढ़ थे, उन्होंने कहा "जिसकी रक्षा तथा सेवा के लिए गुरुजी ने मुझे आज्ञा दी है यदि उसकी रक्षा में प्राण भी चले जाएँ तो उचित ही होगा"। यह कहकर राजा ने सिंह के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। इस समर्पण से प्रसन्न होकर नन्दिनी ने राजा दिलीप को पुत्रप्राप्ति का वरदान दिया और पत्ते का दोना बनाकर उसमें दूध पीने का आदेश दिया। राजा ने बछड़े के दूध पीने के बाद तथा गुरुजी का हवन कार्य सिद्ध होने के पश्चात् दूध पिया। अगले दिन अपने व्रत का पारणा करके राजा दिलीप सुदक्षिणा के साथ अपनी राजधानी लौटे और शीघ्र ही सुदक्षिणा ने गर्भ धारण किया।

तृतीय सर्ग

गर्भ धारण करने से सुदक्षिणा दिन पर दिन कृशकाय होने लगी। राजा ने सुदक्षिणा की सखियों को यथोचित प्रबन्ध करने का निर्देश दिया। कालक्रम से सुदक्षिणा ने रघु को जन्म दिया। राजा दिलीप ने रघु का यज्ञोपवीत करके उसे युवराज बना दिया। राजा दिलीप ने सौ अश्वमेघ यज्ञ करने का संकल्प लिया। निन्यानवे अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न होने पर दिलीप ने अपने घोड़े को छोड़ा और इन्द्र उस घोड़े को लेकर लुप्त हो गए। रघु ने इन्द्र का पीछा करके घोड़ा छुड़वाना चाहा किन्तु इन्द्र से जीत नहीं सका। उसके पराक्रम से प्रसन्न होकर इन्द्र ने रघु से वर माँगने को कहा। रघु ने कहा कि इस अश्व के आपके पास होने की सूचना मेरे पिता को प्राप्त हो जाए और सौ अश्वमेघ यज्ञ का फल मेरे पिता को प्राप्त हो जाए। राजा दिलीप अपने यज्ञ को पूर्ण करके वानप्रस्थ आश्रम चले जाते हैं।

चतुर्थ सर्ग

चतुर्थ सर्ग में महाराज रघु की दिग्विजय का वर्णन है। रघु ने दिग्विजय यात्रा प्रारम्भ की। जिन-जिन राजाओं को रघु जीतते जा रहे थे उन-उन राजाओं को पुनः वही का राजा बना देते थे जिससे रघु का मार्ग निष्कण्टक होता जा रहा था। पूर्व दिशा के राज्य तथा बंगाल के राज्यों को जीतते हुए रघु कलिंग, महेन्द्र पर्वत तथा वहाँ से दक्षिण भारत को जीतते हुए चारों ओर विजयी हुए। चारों दिशाओं को जीतकर रघु अपनी दिग्विजय यात्रा को पूर्ण कर राजधानी अयोध्या लौटे दिग्विजय के अनन्तर रघु ने विश्वजित् नामक यज्ञ प्रारम्भ किया।

पंचम सर्ग

विश्वजित् यज्ञ में दक्षिणा के रूप में रघु ने अपना सर्वस्व दान कर दिया तब वरतन्तु महर्षि के शिष्य मुनि कौत्स रघु से गुरुदक्षिणा लेने पहुँचे और चौदह विद्याओं की गुरुदक्षिणा में चौदह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ माँगी। अगले दिन रघु ने कुबेर के यहाँ चढ़ाई करने की योजना बनाई। प्रातः काल खजाने में सुवर्ण वृष्टि हो गई। रघु ने सारा धन कौत्स को देना चाहा किन्तु कौत्स ने 14 करोड़ से एक भी अधिक मुद्रा लेने से मना कर दिया। कौत्स ने प्रसन्न होकर रघु को पुत्रप्राप्ति का वरदान दिया। रघु के यहाँ अज का जन्म हुआ, इन्दुमती स्वयंवर में अज को बुलाया गया।

षष्ठ सर्ग

इन्दुमती स्वयंवर का मनोरम दृश्य। स्वयंवर में उपस्थित सभी राजाओं और राजकुमारों का वर्णन अतिरोचक तरीके से किया गया है। इन्दुमती की सखी सुनन्दा इन्दुमती को उपस्थित राजाओं का परिचय करवाती है। जैसे ही इन्दुमती राजा अज के सम्मुख पहुँचती है अज की दक्षिण भुजा फड़कने लगती है। इन्दुमती वहीं रुक जाती है और सुनन्दा के हाथों से कुंकुम के चूर्ण से लाल धागे वाली स्वयंवर माला को रघुपुत्र अज के गले में डाल देती है।

सप्तम सर्ग

रघुपुत्र अज के द्वारा इन्दुमती का वरण करके जाते समय राजमार्ग पर अंगनाओं की विविध चेष्टाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त है। रति और कामदेव के समान अज और इन्दुमती सुशोभित हो रहे थे। मार्ग में स्वयंवर में हारे हुए राजाओं ने अज को घेर कर रोक लिया। अज ने उनका सामना किया और गन्धर्वराज प्रियंवद से प्राप्त निद्राकारक अस्त्र को फेंका जिससे सारे राजा व उनकी सेना निद्रामग्न हो गई और अज ने विजयबिगुल बजाया। इन्दुमती शर्म से झुककर अज के साथ अयोध्या आ गई। अज इन्दुमती के आने पर राजा रघु वानप्रस्थ हेतु प्रस्थान कर गए।

अष्टम सर्ग

अज के राज्य में प्रवेश करते ही राज्य का सारा भार उन पर आ गया। राज्याभिषेक के बाद अज ने अपना राज्य बड़ी कुशलता से चलाया। अज में रघु के राज्योचित सारे गुण भी दिखाई दे रहे थे, रघु का परलोकगमन और अज द्वारा और्ध्वदेहिक संस्कार का वर्णन। इन्दुमती ने एक वीर पुत्र को जन्म दिया जिसे दशरथ नाम दिया गया। अज इन्दुमती के साथ नन्दनवन में विहार कर रहे थे। वहाँ नारद की वीणा पर से गिरी पुष्पमाला के आघात से इन्दुमती मर जाती है। इस मृत्यु पर अज का करुण विलाप अष्टम सर्ग का वैशिष्ट्य है महर्षि वसिष्ठ अपने शिष्य के साथ अज को सन्देश

भेजते हैं और इन्दुमती के शाप के कारण पृथ्वी पर आने तथा स्वर्गपुष्प के स्पर्श से मुक्ति पाने का वृत्तान्त बताते हैं। इन्दुमती की मृत्यु के आठ वर्ष के बाद राजा अज भी परलोक चले गए।

नवम सर्ग

दशरथ ने अपने बाणों से शत्रुओं का सफाया कर दिया तथा उत्तर कोशल का राज्य बड़ी कुशलता से सम्भाला। दशरथ ने कौशल, मगध तथा कैकय देश की कन्याओं कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी से विवाह किया। कुछ समय व्यतीत होने के बाद राजा दशरथ अपने योग्य मन्त्रियों के साथ आखेट खेलने वन में गए। अनेक दिन आखेट खेलने के बाद एक दिन मृग का पीछा करते हुए राजा दशरथ अपने समूह से बिछड़ गए। एक तालाब के किनारे का प्रसंग है। श्रवणकुमार अपने अन्धे माता-पिता को तीर्थ ले जा रहा था। जल पीने के लिये श्रवण तालाब पर जल भर रहा था। दशरथ ने भूलवश कोई जंगली पशु जानकर शब्दभेदी बाण से उसे मार डाला। श्रवण के मरने से पुत्र वियोग में उसके माता-पिता भी दशरथ को पुत्रवियोग में मरने का शाप देकर मर गए।

दशम सर्ग

राजा दशरथ पुत्र प्राप्ति की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ करते हैं। दूसरी ओर देवगण राक्षस रावण के अत्याचारों से खिन्न होकर भगवान् विष्णु के पास जाते हैं। विष्णु भगवान् खीर का कटोरा लेकर दशरथ के यहाँ प्रस्तुत होते हैं। दशरथ की तीनों रानियों की कोख से राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न (खीर के प्रभाव से विष्णु के अंशावतार रूप) का जन्म होता है। अयोध्या में हर्षोत्सव मनाया गया। चारों राजकुमारों का जातकर्म संस्कार किया गया। वेदाध्ययन हेतु चारों राजकुमार गुरु वसिष्ठ जी के आश्रम में ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याभ्यास करने लगे

एकादश सर्ग

विश्वामित्र राजा दशरथ से यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को माँगते हैं। ऋषि विश्वामित्र के साथ जाते हुए मार्ग में ताड़का नाम की राक्षसी मिलती है। राम अपने पराक्रम से उसे पराजित कर देते हैं। फिर आश्रम पहुँचकर राम ने अन्य राक्षसों को भी मार गिराया। मिथिला में राजा जनक के यहाँ धनुषयज्ञ का आयोजन हुआ। विश्वामित्र अपने दोनों शिष्यों राम व लक्ष्मण के साथ वहाँ पहुँचे। राम ने शिवजी का धनुष तोड़ दिया और सीताजी ने राम के गले में जयमाला डाल दी। विधिविधान सहित विवाह सम्पन्न किया गया।

द्वादशसर्ग

राजा दशरथ ने राम के राज्याभिषेक की घोषणा की। माता कैकेयी ने देवासुर संग्राम के समय राजा दशरथ के प्राणों की रक्षा के बदले दो वर प्राप्त किये थे। उनमें से प्रथम वर तो कैकेयी ने राम के लिये चौदह वर्ष का वनवास मांगा और द्वितीय में अपने पुत्र भरत को राजगद्दी दिये जाने का वर माँगा। राम ने सहर्ष वनगमन स्वीकार किया। राजा जनक पुत्र वियोग में विलाप करते हुए परलोक चले गए। भरत ने ननिहाल से लौटकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना तो अग्रज राम को लेने वन में गए। राम ने उन्हें समझाकर वापस भजे दिया। अत्यधिक आग्रह पर अपनी चरण पादुका भरत को दे दी। इधर वन में शूर्पनखा के अभद्र आचरण के कारण लक्ष्मण ने उसके नाक व कान

काटकर उसे कुरूप बना दिया। रावण ने अपनी बहन के अपमान का बदला लेने के लिये छल से सीताहरण कर लिया। राम ने रावण का वध करके लंका की गद्दी पर विभीषण को बैठाया और पुष्पक विमान पर बैठकर अयोध्या लौट आए।

त्रयोदश सर्ग

राम ने सीता की अग्निपरीक्षा ली। अयोध्या लौटते समय माल्यवान पर्वत तथा पम्पासरोवर का सुन्दर वर्णन किया। लंका से विजय प्राप्त कर सीता के साथ लौटते समय राम सीता को मार्ग में आने वाले स्थलों को दिखाकर याद दिला रहे हैं कि किन-किन स्थलों पर रुककर राम ने सीता की खोज की तथा क्या-क्या योजनाएँ बनाई थीं। भरत मन्त्रियों के साथ अर्घ्यपात्र लेकर राम की अगुवाई करने आते हैं। राम सुग्रीव तथा विभीषण का परिचय भरत से करवाते हैं। भरत उन दोनों का भी अभिवादन तथा सत्कार करते हैं। श्री राम की शोभायात्रा अयोध्या की ओर बढ़ती है।

चतुर्दश सर्ग

मार्ग में अयोध्या के उपवनों में विश्राम करने के बाद उपवन में ही कौशल्या और सुमित्रा माता राम, लक्ष्मण और जानकी से मिलने आयीं। राजमहल आने पर शुभ मुहूर्त में श्री राम का राज्याभिषेक किया गया। इसके बाद राम ने स्वयं माता कैकेयी के पास जाकर अपने मधुर वचनों से उनके संकोच को दूर किया। श्रीराम ने पर्याप्त सत्कार कर सुग्रीव व विभीषण को भी विदा किया। सीता गर्भिणी हो गई। तभी राम ने सीता के लोकोपवाद की चर्चा सुनी। सीता ने गर्भिणी मनोरथ में गंगातटवर्ती तपोवन देखने की इच्छा व्यक्त की। राम ने इसी मनोरथपूर्ति के व्याज से लक्ष्मण से सीता को वाल्मीकि मुनि के आश्रम के पास छोड़ आने का आदेश दिया। वन में यह परित्याग जानकर सीता करुण विलाप करने लगी। मुनि वाल्मीकि उन्हें आश्रम ले आए। गर्भिणी सीता मुनि कुमारियों के साथ रहने लगी। राम भी सीता का परित्याग करके अत्यन्त दुःखी थे। अश्वमेध यज्ञ में भी राम ने सीताजी की स्वर्णमयी प्रतिमा को ही साथ में बिठाया।

पंचदश सर्ग

लवणासुर नामक राक्षस के उपद्रवों के कारण यमुना तटवर्ती तपस्विजन खिन्न थे। राम से सहायता मागं ने उपस्थित होने पर राम ने शत्रुघ्न को इस संकट को दूर करने भेजा शत्रुघ्न मार्ग में वाल्मीकि मुनि के आश्रम में विश्राम के लिये रुके। उसी रात सीता माता ने लव और कुश को जन्म दिया। शत्रुघ्न ने आगे बढ़कर लवणासुर का वध करके तपस्वियों की तपःस्थली को सुरक्षित किया। महर्षि वाल्मीकि ने लव और कुश के समस्त संस्कार पूरे विधि-विधान से किये तथा बड़े होने पर उन्हें वेदांग पढ़ाया और स्वरचित रामायण का गान भी करवाया।

शम्बकू नामक शूद्र के इन्द्र पद पाने की लालसा में तप करने का प्रयास करने पर अनधिकार चेष्टा के कारण पाप फैल गया। जिसकी वजह से अयोध्या में एक ब्राह्मणपुत्र की अकाल मृत्यु हो गई। राम ने यह सत्य खोजकर शम्बूक का सिर धड़ से अलग कर दिया। ब्राह्मणपुत्र पुनर्जीवित हो उठा। लव-कुश रामकथा सुनाने के लिये राम के दरबार में उपस्थित हुए। वाल्मीकि ने कहा महाराज अब सीता को स्वीकार करो। राम ने सीता से अपनी पवित्रता सिद्ध करके महल वापस आने को कहा तो सीता ने राजसभा में धरती माता को प्रणाम करके कहा यदि मैं पतिव्रता हूँ और

पवित्र हूँ तो मुझे अपनी गोद में ले लो और सीता धरती में समा गई। राम भी स्वर्गलोक को चले गए।

षोडश सर्ग

रघुवंश के समस्त राजकुमारों ने अग्रज कुश को अपना उत्तराधिकारी बनाया। एक दिन स्वप्न में कुश ने देखा कि एक स्त्री उनसे अयोध्या में निवास करने का निवेदन कर रही है। अयोध्या आकर बड़े-बड़े याज्ञिक अनुष्ठान करके कुश ने यज्ञस्तूप गाड़ दिये और अयोध्या में राज करने लगे। कुश के प्रयासों से धीरे-धीरे अयोध्या का सौन्दर्य बढ़ने लगा। एक बार जल क्रीड़ा करते समय कुश के हाथ से जैत्र नामक आभूषण जो कि अगस्त्य ऋषि ने श्रीराम को व श्रीराम ने कुश को दिया था जल में गिर गया। बहुत ढूँढने पर भी न मिलने पर कुश ने अपना धनुष चढ़ाया कि जल में जो नाग रहते हैं उन्होंने उसे छिपा लिया हो तो मैं उन्हें मार कर जैत्र वापस ले लेता हूँ। तभी जल से नागराज कुमद आए और वह आभूषण सौंपकर अपनी कन्या कुमुद्वती से विवाह का प्रस्ताव रखा। कुश का कुमुद्वती से विवाह हुआ।

सप्तदश सर्ग

राजा कुश और रानी कुमुद्वती के पुत्र अतिथि हुए। समस्त विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर अतिथि योग्य शासक बने। उसका विवाह करके कुश ने अतिथि का राज्याभिषेक किया। कुश का इन्द्र की सहायतार्थ शामिल हुए एक युद्ध में वध हो गया। सप्तदश सर्ग में अतिथि का सुयोग्य शासक तथा पराक्रमी होना वर्णित है। अतिथि के राज्य में सर्वत्र सुख, शांतिसम्पन्नता और खुशियाँ व्याप्त थीं। अतिथि ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ में जिन ब्राह्मणों ने सहयोग किया उन सभी का सत्कार अतिथि ने कुबेर के समान किया।

अष्टादश सर्ग

निषध देश की राजकुमारी राजा अतिथि की रानी थी। उनके एक अत्यन्त तेजस्वी और वीर पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम निषध रखा गया। निषध भी अपने पिता के समान पराक्रमी योद्धा बना। समुद्रपर्यन्त व्याप्त पृथ्वी तक उसने अपना राज्य फैलाया। निषध के पुत्र राजा नल हुए। नल के नभ नाम का योग्य पुत्र हुआ। नभ के पुण्डरीक नाम का पुत्र हुआ। पुण्डरीक के क्षेमधन्वा नाम का पुत्र हुआ। क्षेमधन्वा से देवानीक का जन्म हुआ। देवानीक का पुत्र अहीनग, अहीनग के शील, शील के उन्नाभ, उन्नाभ के वज्रनाभ, वज्रनाभ के शंखण, शंखण के पुत्र अश्विनी कुमार (व्युषिताश्व), व्युषिताश्व के विश्वसह, विश्वसह के हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभ के कौशल्य, कौशल्य के वसिष्ठ, वसिष्ठ के शिरोमणि, शिरोमणि के पुन्न, पुन्न के पुष्य, पुष्य के पुत्र ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धि के पुत्र सुदर्शन हुए। इस प्रकार 18वें सर्ग में इक्कीस राजाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

एकोनविंशति सर्ग

तेजस्वी राजा सुदर्शन के अग्निवर्ण नाम का पुत्र हुआ। सुदर्शन ने अग्निवर्ण को राजगद्दी पर बैठाया और स्वयं नैमिषारण्य में रहने लगे। वानप्रस्थ का नियमपूर्वक पालन करते हुए सुदर्शन धार्मिक कृत्य कर रहे थे। दूसरी तरफ अग्निवर्ण कुछ समय पश्चात् राज काज का भार मन्त्रियों पर छोड़कर स्वयं कामुक का जीवन व्यतीत करने लगा। समय के प्रभाव के कारण राजा क्षय रोग से पीड़ित हो गया। राजा की मृत्यु के बाद मन्त्रियों ने राजभवन के उपवन में ही राजा की देह को पंचतत्त्व में विलीन करवा

दिया और गर्भिणी महारानी को पुत्र प्राप्ति तथा पुत्र के युवा होने तक राजगद्दी पर बिठा दिया। महारानी मन्त्रियों से मन्त्रणा करते हुए राजकाज व्यवस्थित रूप से चलाती रही और उसका पुत्र ही रघुवंश का अन्तिम राजा हुआ।

बोध प्रश्न 2

1. नीचे दिये गये कथनों में से सत्य (✓) तथा असत्य (×) कथन का चयन कीजिये—

- i) रघुवंश महाकाव्य का मूल स्रोत रामायण है— ()
- ii) राजा दिलीप सुदक्षिणा के साथ गुरु वसिष्ठ के आश्रम में गये थे — ()
- iii) राजा रघु ने नन्दिनी की सेवा की — ()
- iv) इन्दुमती स्वयंवर का वर्णन षष्ठ सर्ग में है— ()
- v) अज के पुत्र का नाम अतिथि है— ()
- vi) राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया — ()

2. रघुवंश महाकाव्य की रचना किसने की ?

.....

3. रघुवंश महाकाव्य में कितने सर्ग तथा श्लोक हैं ?

.....

4. रघुवंश में कितने राजाओं का वर्णन प्राप्त है ?

.....

अभ्यास प्रश्न 2

- 1. रघुवंश महाकाव्य का परिचय लिखिये।
- 2. रघुवंश महाकाव्य के द्वितीय सर्ग का कथासार लिखिये।
- 3. रघुवंश में वर्णित राजाओं के नाम लिखिये।

6.3.4 रघुवंश महाकाव्य के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

क. राजा रघु का चरित्र चित्रण —

वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि रघु इतने प्रभावी तथा प्रतापी राजा हुए कि उनके नाम से उनके वंशज रघुवंशी तथा राघव कहलाए। रघु महाराज दिलीप तथा रानी सुदक्षिणा के दृढ़संकल्प, कठोर साधना, गुरु वसिष्ठ के आशीर्वाद तथा नन्दिनी गौ के कृपा प्रसाद से पृथ्वी पर आए। जिस प्रकार सूर्य भगवान् अपने पवनवेग से दौड़ने वाले घोड़ों द्वारा कम ही समय में चारों दिशाओं को पार कर लेते हैं वैसे ही रघु ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से चार समुद्रों के समान आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति इन चारों विद्याओं को शीघ्र सीख लिया।

“धियः समग्रैः स गुणैरुदारधीः क्रमाच्चतस्रश्चतुरण्वोपमाः।

ततार विद्याः पवनातिपातिभिर्दिशो हरिदिर्भरितामिवेश्वरः” ।।

व्यक्तित्व —युवावस्था के कारण रघु की भुजाएँ हल के जुए के समान दृढ़ और लम्बी हो गयीं। छाती चौड़ी हो गयी और कन्धे फैल गए। तथापि वे इस तरह झुककर चलते थे कि दिलीप के समक्ष अपना बड़प्पन प्रकट नहीं होने देते थे।

“युवा युगत्यायतबाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः ।

वपुः प्रकर्षादजयत् गुरुं रघुस्तथापि नीचैर्विनयाददृश्यत” ॥ (रघुवंश-3/34)

श्रद्धा- रघु की गौ माता पर इतनी श्रद्धा थी कि जब पिता दिलीप के सौवें अश्वमेध यज्ञ का अश्व छोड़ने पर इन्द्र ने उसे अदृश्य कर लिया तब नन्दिनी के मिलने पर रघु ने श्रद्धावश गौमूत्र को नेत्रों में लगाकर दिव्य दृष्टि प्राप्त की ।

“तदङ्गनिःस्यन्दजलेन लोचने प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम् ।
अतीन्द्रिष्वप्युपपन्नदर्शनो बभूव भावेषु दिलीपनन्दनः” ॥ (रघुवंश-3/41)

पराक्रम- राजा दिलीप के अश्वमेध यज्ञ के अश्व को जब इन्द्र छोड़ नहीं रहे थे तब रघु ने उन्हें युद्ध के लिये ललकारा और बड़ी वीरता से इन्द्र से युद्ध किया । इन्द्र के धनुष की डोरी को तोड़ डाला । इन्द्र के अत्यन्त कठोर वज्र का प्रहार भी सह लिया जिसे कोई भी सहन नहीं कर सकता था । इन्द्र ने स्वयं प्रसन्न होकर रघु से कहा कि पर्वतों के पंख काटने वाले मेरे कठोर वज्र के आघात को आज तक अन्य कोई सहन नहीं कर पाया है । मैं तुम्हारे शौर्य पर प्रसन्न हूँ ।

“असंगमद्विष्वपि सारवत्तया न मे त्वदन्येन विसोढमायुधम्” ।

ख. राजा दिलीप का चरित्र चित्रण-

कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के नायक के रूप में सर्वप्रथम राजा दिलीप का चरित्र प्रस्तुत किया है । सौष्टव, ज्ञान, शक्ति और पराक्रम में दिलीप अद्वितीय राजा हैं ।

शास्त्रज्ञान के अनुरूप आचरण- राजा दिलीप ज्ञानवात् होते हुए भी मौन रहते हैं, शक्तिहोते हुए भी क्षमा का गुण उनमें विद्यमान है, दान देते हुए भी प्रशंसारहित्य का गुण है । विपरीत गुण राजा दिलीप में सहोदर की भाँति अत्यन्त प्रेम से रहते हैं ।

“ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघा विपर्ययः

गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव” ॥

जैसा राजा दिलीप का सुन्दर स्वरूप था वैसी ही प्रखर उनकी मेधा थी । अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से आपने सारे शास्त्र शीघ्र ही पढ़ डाले । शास्त्र के अनुसार ही वे कार्यारम्भ करते तथा उस कार्य को समाप्त करते तथा अपूर्व सफलता भी प्राप्त करते ।

“आकार सदृशः प्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः ।

आगमैः सदृशारम्भ आरम्भ सदृशोदयः” ॥

प्रजा प्रेम- एक उत्तम शासक के गुण दिलीप में प्रचुरता से थे । दिलीप सांसारिक सुखों में रत रहते थे किन्तु उनमें लिप्त नहीं रहते थे । दण्ड और पुरस्कार का निर्णय वे निष्पक्ष भाव से करते थे । प्रजा का पालन अपनी सन्तति के समान करते तथा उनकी आजीविका का प्रबन्ध भी करते थे । अपनी प्रजा के लिये अन्न, वस्त्र, धन तथा शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करते थे ।

“प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।

सपिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः” ॥

अपने इस वात्सल्य के कारण प्रजा के वास्तविक पिता तो दिलीप ही थे । गोत्रीय पिता तो नाममात्र के लिये रह गए थे ।

निडरता— राजा दिलीप के नन्दिनी की सेवा करते समय सिंह के द्वारा जब नन्दिनी पर आक्रमण किया गया तब अत्यन्त निडर भाव से राजा ने स्वयं की देह को सिंह के सम्मुख समर्पित कर दिया।

दयालुता— नन्दिनी ने जब पुत्र प्राप्ति का वर दिया और दिलीप से कहा कि पत्ते के दोने में मेरा दूध लेकर पी लो। तब दिलीप ने कहा कि इस दूध पर पहला हक बछड़े का तथा दूसरा हक गुरुजी के यज्ञ भाग का है। उसके पश्चात् ही मैं दूध ग्रहण करूँगा।

रक्षाभाव— गुरु वसिष्ठ के द्वारा दिलीप को नन्दिनी की सेवा में नियुक्त किया गया। दिलीप ने नन्दिनी की रक्षा हेतु अपने प्राणों को भी तुच्छ गिना। शरणागत की रक्षा का यह भाव उत्तम शासक का चिन्ह है।

शिष्टाचार— राजा दिलीप में व्यावहारिक शिष्टाचार का भी ज्ञान है। जब वे पुत्र प्राप्त्याशा से गुरु वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचते हैं तब रथ पर से शिष्टाचारवश सहारा देकर पहले रानी सुदक्षिणा को उतारते हैं फिर स्वयं रथ से उतरते हैं।

गुरुभक्ति— राजा दिलीप जब गुरु वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचते हैं तो आदरपूर्वक गुरुजी को ही सर्वसामर्थ्यवान् कहते हुए उनका अभिवादन करते हैं। आपके प्रभाव से ही मेरे राज्य के सातों अंग कुशल हैं। आप मन्त्रों के वेत्ता हैं आपके मन्त्रों की शक्ति मेरे शत्रुओं को दूर से ही रोक कर रखती है। आपके ब्रह्म तेज के बल से प्रजा में सब नगरवासी कष्टरहित सौ बरस जीते हैं।

“तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।

प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः”॥

राजा राम का चरित्र—चित्रण

रामायण के प्रति आस्था और श्रद्धा के कारण श्रीराम को भगवान् माना गया है। प्रभु श्री राम को कालिदास ने भी भक्तिभावपूर्वक सम्मान दिया है।

वपुसौष्ठव— भगवान् श्री राम का स्वरूप अत्यन्त मनोरम था। तभी उनका नाम राम रखा गया। जब राजा राम विश्वामित्र के साथ कामदेव की तपःस्थली पहुँचे तब वे कामदेव के सौन्दर्य को भी तिरोहित कर रहे थे।

राम इत्यभिरामेणवपुषस्तस्य चोदितः।

नामधेय गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममंगलम्॥

राम के सौन्दर्य पर राजा जनक भी मुग्ध हो गए थे तभी उनके मन में यह शंका हुई कि मैंने सीता स्वयंवर में धनुष को तोड़ने जैसी कठोर शर्त क्यों रखी?

तस्य वीक्ष्य ललितं वपुः शिशोः पार्थिवः प्रथितवंशजन्मनः।

स्वयं विचिन्त्य च धनुर्दुरानमं पीडिता दुहितृशुल्कसंस्थय॥ (रघुवंश—11/38)

दयालुता और सहानुभूति— राम स्वभाव से अत्यन्त दयालु थे दीन दुखियों के प्रति उनके हृदय में सदैव सहानुभूति रहती थी। अपनी एक भूल के कारण गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या समाज से बहिष्कृत कर दी गई। राम ने उस पर कृपा कर उसका

उद्धार किया। जटायु के घायल होने पर राम बड़े विचलित हो गए और जटायु के मरण पर उसकी सारी क्रियाएं अपने पिता के समान कीं।

कुशल राजनीतिज्ञ— बाली के विरुद्ध सुग्रीव की सहायता करके राम ने रावण से युद्धकरने के लिये एक शक्तिशाली मित्र प्राप्त किया और विभीषण को आश्रय देकर शत्रु के घर का भेद जानने की नीति को अपनाया।

संस्कृति का सम्मान— अन्य जातियों और क्षेत्रों के रीति-रिवाजों का राम सम्मान करते थे। बाली की पत्नी तारा को रखने पर राम ने सुग्रीव की निन्दा नहीं की। बाली का राज्य सुग्रीव को तथा रावण का राज्य विभीषण को देकर उन्होंने अपने उदार व्यक्तित्व को पुष्ट किया।

पराक्रम— विश्वामित्र ऋषि ने राम को धनुर्वेद के वे गूढ़ रहस्य तथा विशेष शस्त्रास्त्र प्रदान किये जो अन्य किसी के पास नहीं थे। राम में शारीरिक बल भी प्रचुर था। उन्होंने अल्पायु में ही ताड़कासुर तथा सुबाहु का संहार किया। दण्डकारण्य में भी अनेक राक्षसों को अकेले ही परास्त कर दिया।

विनयशीलता— क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए राम को परशुराम की चुनौती को तो स्वीकार करना पड़ा था किन्तु परशुराम द्वारा उत्तेजित होकर राम को कहे गए कटु वाक्यों के उत्तर में राम ने अशिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया और अन्त में जब परशुराम ने हार मान ली तब राम ने उनके चरणों में प्रणाम करके क्षमा याचना की। यह राम की विनयशीलता का उदाहरण है।

समानता का भाव— राजा राम सदैव समभाव में रहते थे। राम इतने गम्भीर व्यक्तित्व वाले थे कि राज्याभिषेक के बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करते समय भी उनका मुख अतीव प्रसन्न नहीं था और वन जाते समय वल्कल धारण करके भी उनका मुख विषाद से व्यथित नहीं था। हर परिस्थिति में उनका मुख समभाव में ही रहता था।

एकपत्नीव्रत— राम सीता से अत्यधिक प्रेम करते थे। सीता का परित्याग जब लोक लाज से किया तब लक्ष्मण से उसका अन्तिम सन्देश सुनकर उनके अश्रु बहने लगे। राम सीता से इतना प्रेम करते थे कि उन्होंने सीता परित्याग के बाद भी दूसरा विवाह नहीं किया। यहां तक कि अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करने में जब जोड़े से यज्ञ का आयोजन करने की स्थिति आई तब भी श्रीराम ने सोने की सीता की मूर्ति ही बनवाई। अन्य स्त्री के विषय में सोचा भी नहीं।

“सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां

तस्या एव प्रतिकृत सखो यत्क्रतूनाजहार” ।।(रघुवंश-14/87)

आदर्शमानव— भगवान् श्री राम को रामायण में आदर्शचरित्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। रघुवंश में भी श्री राम एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श राजा तथा आदर्श मित्र के रूप में बताए गए हैं।

घ. राजा अज का चरित्र चित्रण —

कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के पात्रों में अज को मध्यम कोटि का नायक बताया है। अज वीर और गम्भीर नायक हैं।

नर्मदा नदी के तट पर पहुँचने पर एक जंगली हाथी अज के शिविर पर हमला कर देता है। अज इस हमले से तनिक भी विचलित नहीं होते।

स्वयंवर में इन्दुमती द्वारा वरण करने के बाद लौटते समय हारे हुए राजाओं ने क्रुद्ध होकर अज को घेर लिया। अज बड़े निडर होकर उनका मुकाबला करके उनको हरा देते हैं। गन्धर्वास्त्र छोड़कर राजाओं की सेना को सुलाकर रानी इन्दुमती को वहाँ से ले जाते हैं—

“ततो धनुष्कर्षणमूढहस्तमेकां सपर्यस्तशिरस्त्रजालम्।

तस्थौ ध्वजस्तम्भनिषण्णदेहं निद्राविधेय नरदेवसैन्यम्”।।(रघुवंश—7/62)

ड. सीता का चरित्र चित्रण —

रघुवंश में कालिदास ने रघुवंशी राजाओं के चरित्र-चित्रण पर अपनी लेखनी चलाई है। तथापि राजाओं का वर्णन करते समय तीन चार स्त्रीपात्र गृहस्थी के व्याज से प्रत्यक्ष हुए हैं। उन पात्रों में सीता भी महत्वपूर्ण हैं। स्त्रीपात्रों का चित्रण प्रसंगवश प्राप्त है तथापि सीता सच्चरित्रा नायिका के रूप में रघुवंश में वर्णित हैं। सीता के जीवन में बहुत कम समय ऐसा आया जब उन्होंने गृहस्थी के सुख को प्राप्त किया। अन्यथा सीता के जीवन में दुःख व अपमान बहुत है।

राजा जनक की पालिता पुत्री सीता को प्रभु श्रीराम ने स्वयंवर में धनुष तोड़कर वरण किया। राम के प्रति सीता का प्रेम व भक्ति इतनी सहज थी कि राम को वनवास सुनाए जाने पर सीता भी वल्कल धारण करके वन प्रस्थान हेतु तैयार हो गईं। उनका स्वभाव अत्यन्त सरल एवं कोमल था तथापि वन के कष्टों को उन्होंने हँसते-हँसते झेला।

राम के द्वारा जब लोक भय से सीता का परित्याग किया गया तब ऋषि वाल्मीकि ने बड़े कटु शब्दों में सीता से राम की निन्दा की तब भी सीताजी के मुख से पति के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं निकला। उन्होंने गुरुजी से सिर्फ इतना ही कहा कि शायद ये मेरे ही किन्हीं पूर्वजन्म के पापों का फल है। पतिव्रता धर्म का इतनी श्रद्धा और प्रेम से पालन अनुकरणीय है।

“कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः।

ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जधुरप्रसह्यः”।।(रघुवंश—14/62)

च. इन्दुमति का चरित्र चित्रण —

राजा अज की पत्नी इन्दुमती अपूर्व रूप सौन्दर्य की धनी है। सुकुमारता और लावण्य उनमें अपूर्व है। कवि कालिदास ने इन्दुमती को विधाता की विशेष रचना कहा है। स्वयंवर में पधारे सारे राजा उन पर मोहित हो गए थे किन्तु वे सुशिक्षित और गुणों की पारखी हैं, अतः उन्होंने अपने योग्य वर के रूप में अज को ही चुना। उनकी जोड़ी को सभी लोग चन्द्रमा व चाँदनी का मेल बताते हैं, गंगा और समुद्र का मिलन बताते हैं।

“शशिमुपगतेयं कौमुदी मेघयुक्तं जलनिधिमनुरूपं जह्नु कन्यावतीर्णा”।।

इन्दुमती मात्र रूप व लावण्य की ही प्रतिमूर्ति नहीं थी अपितु उनमें कुशल गृहिणी के भी समस्त गुण विद्यमान थे। पशुप्रेम, ललित कला प्रवीणता, विश्वस्तसखी तथा पति

की उत्तम परामर्शक जैसे गुण उनमें विद्यमान थे। इन्दुमती को कालिदास ने आदर्श गृहिणी के रूप में रघुवंश में चित्रित किया है।

छ. सुदक्षिणा का चरित्र चित्रण –

अयोध्या की महारानी, राजा दिलीप की रानी सुदक्षिणा मगध देश की राजकुमारी थी। अत्यन्त उदारहृदय, दयालु, दान देने में तत्पर सुदक्षिणा आदर्श व्यक्तित्व की धनी हैं। अपने सौन्दर्यमात्र को लेकर अन्तःपुर में रहने वाली नहीं अपितु राजा के साथ राजकार्यों हेतु तथा प्रजाजनों से मिलने वे बाहर भी निकलती थी। महारानी होते हुए भी पुत्र प्राप्ति की प्रत्याशा में वे गुरु वशिष्ठ के आश्रम में जाकर पति के साथ ऋषि तथा ऋषि पत्नी के चरणों में वन्दन करती हैं तथा कुशा बिछाकर सो जाती हैं। गुरु के द्वारा बताए गए ब्रह्मचर्य का भी पालन करती हैं तथा गौ नन्दिनी की तन- मन से सेवा करती हैं।

नन्दिनी प्रसन्न होकर जब दिलीप-सुदक्षिणा को पुत्रप्राप्ति का वर देती है तब सुदक्षिणा गर्भिणी होती हैं उस समय उसका व्यवहार स्त्रीजनोचित लज्जा वाला रहता है। गर्भ के भार से वह कृशकाय हो जाती हैं तब राजा सुदक्षिणा की सखियों से कहते हैं कि यह मुझसे लज्जावश अपनी इच्छा नहीं बता पाएगी। आप सब इसका चाहा गया मनोरथ पूर्ण करने की व्यवस्था कीजिये।

“न मे ह्रियाशंसति किञ्चिदीप्सितंस्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।

इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतःप्रियासखीरुत्तर कोसलेश्वरः”।।(रघुवंश-3/5)

बोध प्रश्न 3

1. रिक्त स्थानों की पूति कीजिये।

- राजा दिलीप ने यज्ञ किया।
- वात्सल्य के कारण प्रजा के वास्तविक पिता तो राजा ही थे।
- राजा दिलीप ने की सेवा की।
- ताड़कासुर का वध ने किया।
- सुदक्षिणा देश की राजकुमारी थीं।

2. किस राजा के नाम से रघुवंश का नाम ‘रघुवंश’ पड़ा ?

.....

.....

3. किस राजा का जन्म नन्दिनी गौ के आशीर्वाद से हुआ ?

.....

.....

4. ‘आकारसदृशः प्रज्ञः’ किस राजा के लिये कहा गया है ?

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 3

1. राम का चरित्र-चित्रण लिखिये।
2. सुदक्षिणा के चरित्र की पाँच विशेषतायें लिखिये।

6.4 कुमारसम्भव' महाकाव्य परिचय

कालिदास की यह रचना आठ सर्गों वाला महाकाव्य है। जैसा कि इसका नामकरण किया गया है— कुमार (कार्तिकेय) + सम्भव (जन्म) अर्थात् यह महाकाव्य शिव-पार्वती के पुत्र कार्तिकेय के जन्म से सम्बन्ध रखता है।

कथासार मूलतः इस प्रकार है — तारकासुर के अत्याचारों से दुःखी इन्द्रादि देवता ब्रह्मा जी के पास जाते हैं। ब्रह्मा जी देवताओं को आने वाले समय की प्रतीक्षा हेतु कहते हैं। वे बताते हैं कि हिमालय की पुत्री उमा से शिव का विवाह होने पर उनसे उत्पन्न कुमार से ही तारक का वध हो सकेगा। ब्रह्मा जी के अन्तर्धान हो जाने पर देवता स्वर्ग चले जाते हैं। इधर उमा धीरे-धीरे बड़ी हो रही हैं। शिव जी हिमालय के क्षेत्र में तपस्या में मग्न हैं। इन्द्र कामदेव को दोनों में प्रेम उत्पन्न करने का काम सौंपते हैं। कामदेव रति (पत्नी) के साथ शिव के तपस्याक्षेत्र में पहुँचता है। पार्वती तपस्यारत शिवजी की पूजा करने सखियों के साथ पहुँचती हैं। इससे पूर्व कामदेव सब ओर वसन्त का सा चमत्कार फैला चुका है। ऐसी स्थिति में कामदेव शिव पर अपना पुष्पबाण चला देता है। जिससे क्रुद्ध शिव तृतीय नेत्र से उसको भस्म कर देते हैं। कामदेव का भस्म होना पार्वती के सामने ही घटित होता है। रति के निरन्तर विलाप से आकाशवाणी होती है कि पार्वती से शिव का विवाह होने के पश्चात् ही शिव कामदेव को अपने अन्दर बिना शरीर के प्रकट करेंगे। इसमें वर्णित कथा संक्षेप में इस प्रकार है

पर्वतराज हिमालय के मैनाक नामक पुत्र और गौरी नामक कन्या हुई। कन्या पार्वती और उमा नाम से भी विख्यात हुई। जब कन्या हुई तो एक दिन उनके घर नारद आए और भविष्यवाणी की कि कन्या का विवाह शिव से होगा। यह भविष्यवाणी सुनकर हिमालय आश्वस्त हो गए। उधर शिव हिमालय के शिखर पर तप कर रहे थे। हिमालय ने एक सखी के साथ उमा को उनकी परिचर्या के लिये भेज दिया और उमा भक्तिभाव से शिव की सेवा करने लगी।

उन्हीं दिनों तारकासुर से युद्ध में देवता लोग पराजित हो गए। दैत्य अनेक प्रकार के छल करने लगे। तब इंद्र सहित सारे देवता ब्रह्मा के पास आए। तारकासुर के निमित्त योग्य सेनापति माँग की। तब ब्रह्मा ने कहा कि शंकर से उत्पन्न पुरुष ही, तुम्हारा योग्य सेनापति हो सकता है, इसलिए तुम लोग प्रयास करो, जिससे शिव —पार्वती के प्रति आसक्त हों। यदि शिव ने पार्वती को स्वीकार कर लिया तो पार्वती से जो पुत्र होगा तो उसके सेनापति बनने पर तुम्हारी विजय होगी। तत्पश्चात् इंद्रादि देवता शिव के विरक्त भाव को हटाने के उपाय पर विचार करने के लिये एकत्र हुए। जब मदन उस सभा में आए तो इंद्र ने उनसे अनुरोध किया कि वे अपने मित्र वसन्त के साथ शिव के तपस्या स्थान पर जायें और शिव को पार्वती के प्रति आसक्त करें। तदनुसार मदन अपनी पत्नी रति और मित्र वसन्त को लेकर शंकर के आश्रम में पहुँचे। जब पार्वती कमलबीज की माला अर्पण करने शिव के निकट पहुँची और शिव ने उसे लेने के लिये हाथ बढ़ाया, तब मदन ने अपने धनुष पर अस्त्र चढ़ाया। तत्क्षण शिव का मन

विचलित था। शंकर ने इस प्रकार मन के अकस्मात् विकृत होने का कारण जानने के लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। उन्हें शरसंधान करता मदन दिखाई पड़ा। उसे देखते ही शिव आग बबूला हो गए, उनके तृतीय नेत्र से अग्निज्वाला प्रकट हुई और मदन अर्थात् उसमें भस्म हो गये।

रति अपने पति को इस प्रकार भस्म होते देख विलाप करने लगी और वसंत से चिता तैयार करने को कहा और स्वयं प्राण त्यागने को तैयार हुई। तब आकाशवाणी हुई कि थोड़ा धैर्य धारण करो तुम्हें तुम्हारा पति पुनः प्राप्त होगा।

उधर शिव नारी संपर्क से बचने के लिए अंतर्धान हो गए। मदन के भस्म होने और शिव के अंतर्धान हो जाने से पार्वती ने अपना सारा मनोरथ विफल होते देखा और यह सोचकर कि यह रूपसौंदर्य व्यर्थ है, वे शिव को प्रसन्न करने के लिए एक पर्वत शिखर पर जा कर उग्र तप करने लगी। कुछ काल के अनंतर शिव का मन पिघला, उन्होंने पार्वती को स्वीकार करने का विचार किया। किंतु इससे पूर्व उन्होंने पार्वती की परीक्षा लेने का निश्चय किया और वे एक तपस्वी के आश्रम में पहुँचे। पार्वती ने अतिथि के रूप में उनका समुचित सत्कार किया। तदंतर उस तरुण तपस्वी ने पार्वती से जिज्ञासा की कि किसकी प्राप्ति के लिए इतनी उग्र तपस्या कर रही हो। अतिथि के प्रश्न को सुनकर पार्वती लज्जित हुई और अपने मनोभाव प्रकट करने में संकोच करने लगी तब उनकी सखी ने शिव की प्राप्ति की इच्छा की बात कही। यह सुनकर तपस्वी वेशधारी शिव, शिव के दुर्गुणों और कुरूपता आदि का उल्लेख कर उनकी निंदा करने लगे। पार्वती को यह शिव निंदा सहन नहीं हुई और उन्हें डाँटने लगी। तब शिव अपने स्वरूप में प्रकट हुए और उनका हाथ पकड़ लिया।

कुमारसम्भवम् की कथा सर्गानुसार –

- प्रथम सर्ग में उमा (पार्वती) का जन्म
- द्वितीय सर्ग में तारकासुर का उपद्रव एवं देवताओं का ब्रह्मा जी के पास जाना तथा इन्द्र द्वारा कामदेव को शिवजी के पास भेजा जाना
- तृतीय सर्ग में शिव द्वारा कामदेव का भस्म किया जाना
- चतुर्थ सर्ग में कामदेव की पत्नी रति का विलाप
- पञ्चम सर्ग में पार्वती की तपस्या एवं शिव द्वारा पार्वती की परीक्षा
- छठे सर्ग में पार्वती को शिव के लिए देने का निश्चय
- सप्तम सर्ग में शिव-पार्वतीविवाह
- अष्टम सर्ग में कुमार का जन्म वर्णित है।

6.4.1 पार्वती की तपस्या का वर्णन

कुमारसम्भव का पञ्चम सर्ग बहुत रोचक है। इस सर्ग में मुख्य रूप से दो घटनाओं का वर्णन है— 1. पार्वती-तपस्या तथा 2. शिव-पार्वती का संवाद। इस सर्ग में कवि ने पार्वती द्वारा शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए जो तप किया गया उस महत्वपूर्ण वर्णन के कुछ अंश आपके अध्ययन के लिए प्रस्तुत है यथा—

कुमारसंभवम् पंचम सर्ग के प्रथम श्लोक के माध्यम से कवि बताते हैं कि जब पार्वती शिव को कामदेव को अपनी क्रोधाग्नि से भस्म करते हुए देखती है तो उनके मन में

उत्पन्न अभिलाषा जो कि सौंदर्य द्वारा शिव प्राप्ति थी वह नष्ट हो गई, अतः पार्वती ने अपने सौंदर्य की निन्दा की क्योंकि पार्वती का सौंदर्य उनके प्रिय शिव को अपनी और आकर्षित नहीं कर सका तब पार्वती ने समाधी का सहारा (आश्रय) लिया और तपस्या द्वारा अपने सौंदर्य को सफल बनाने की इच्छा की, क्योंकि वह जानती थी की उस प्रकार का प्रेमी व वैसा (शिव जैसा) पति दोनों बिना तपस्या के प्राप्त नहीं किया जा सकता। पार्वती की सखी जब पार्वती की माता मैना से यह बताती है कि पार्वती का मन शिव की ही प्राप्ति में संलग्न हो गया है और वह उसके लिए तपस्वी करने को भी कृतसंकल्प है, तो माता मेना चिन्तित होती है और पार्वती से कहती है—

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्से! क्व च तावकम् वपुः।

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः।।

अर्थात् — हे पुत्री तुम्हारे। मनचाहे देवता घर में ही है। कहाँ तो यह कठोर तपस्या और कहाँ तुम्हारा यह कोमल शरीर ? शिरीष का कोमल फूल भौरों के पैर रखने के भार को सहन कर सकता है, किंतु पक्षी के पदाघात को सहन नहीं कर सकता।

माता मेना के विभिन्न प्रकार से समझाने के बाद भी पार्वती ने अपना निर्णय नहीं बदला और वह अटल रही। इसके बाद पार्वती ने अपनी प्रिय और विश्वसनीय सखी के माध्यम से अपने पिता हिमालय से तपस्या के लिए वन में रहने की आज्ञा मांगी। अपने पिता हिमालय की आज्ञा पाकर पार्वती ने अपनी तपस्या के लिए प्रस्थान किया तथा तपस्या के लिए उचित स्थान चुना। पार्वती ने अपनी तपस्या के लिए एक ऐसे शिखर को चुना जो मोरों से युक्त था, इस स्थान पर हिंसक जंतु नहीं रहते थे इसलिए यह स्थान तपस्या की दृष्टि से उत्तम था अथवा यह स्थल तपस्वी जनों से युक्त था इसी कारण पार्वती ने अपनी तपस्या के लिए इस शिखर को चुना जो कि बाद में उन्हीं के नाम (गौरी शिखर) के नाम से संसार में प्रसिद्ध हो गया। दृढ़ निश्चय वाली उस पार्वती ने चंचल लड़ियों से चन्दन के पोंछने वाले हार को उतारकर, प्रातः कालीन सूर्य के समान लाल पीली, स्तनों की ऊँचाई से छिन्न अवयव वाली वृक्ष की छाल को धारण कर लिया। पार्वती ने तपस्या के अनुरूप जटाओं को भी धारण किया—

यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभि रप्येवमभून्तदाननम् ।

न षट्पदश्रेणिभिरेव पंकजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते ।।

प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से कवि कहना चाहते हैं कि उस पार्वती का मुख जिस प्रकार सजे हुए केशों में सुशोभित लगता था, उसी प्रकार जटाओं से भी मनोहर प्रतीत होता था। कमल का पुष्प केवल भ्रमरों की पंक्तियों से ही सुशोभित नहीं हुआ करता अपितु काई के साथ भी शोभायमान लगता है। पार्वती ने जब तपस्या का व्रत आरंभ कर दिया तो उसके लिए आवश्यक हो गया कि वह तपस्या के योग्य सभी साधनों को अपनाए इसलिए उसने करधनी के स्थान में तीन लड़ियों की मूँज की बनी मेखला को कमर में पहन लिया। उसने अपने जीवन में इसको पहली बार धारण किया था, अतः उसकी कठोरता के कारण इसके शरीर में रोमांच उत्पन्न हो जाता था और परिणाम स्वरूप उसकी कमर में जहाँ पर मेखला बँधी हुई थी, वह स्थान रक्त वर्ण का हो गया था।

उस पार्वती के द्वारा लाक्षारस की लालिमा का परित्याग किए हुए अधरोष्ठ से और स्तनों के अंगराग से लाल गेंद से हटाया गया, हाथ कुशों के अंकुरों को ग्रहण करने

से घायल अंगुलियों वाला और रुद्राक्ष की माला से प्रेम करने वाला कर दिया गया। मुनि व्रत धारण करने के बाद पार्वती के जमीन पर सोने का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि व्रत धारण करने से पहले पार्वती अपने पिता के घर में अत्यंत सुकोमल हंस के समान श्वेत, मुलायम एवं बहुमूल्य पलंग पर सोया करती थी और अब वही पार्वती बिस्तर से रहित नग्न भूमि पर रात्रि के समय सोया करती है और दिन के समय बैठती है। कवि बताते हैं कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने धन को किसी के पास अमानत के रूप में रख देता है और समय पड़ने पर पुनः उसे वापिस ले लेता है। उसी प्रकार पार्वती ने भी अपने हाव-भाव आदि विलासों को सुकोमल लताओं के समीप तथा अपनी चञ्चल दृष्टि को हिरणियों के समीप तपस्या समाप्त होने के बाद वापिस ले लेने के लिए मानो अमानत के रूप में रख दिया था। तपस्या के समय पार्वती द्वारा छोटे-छोटे वृक्षों का पुत्र के समान पालन-पोषण किए जाने का वर्णन भी कवि ने इस सर्ग में किया है। वन में तपस्या करने वाली पार्वती सभी वन्य प्राणियों के प्रति अपने हृदय में दया का भाव रखती थी।

कृताभिषेकां हुतज्ञातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम् ।

दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमनधर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ॥

अर्थात् स्नान करने वाली अग्निहोत्र हवन करने वाली वृक्ष की छाल से निर्मित वल्कल वस्त्रों को धारण करने वाली तथा वेद पाठ करने वाली उस पार्वती के समीप उसके दर्शन के अभिलाषी ऋषिगण आया करते थे। धर्म में अग्रणी लोगों की आयु नहीं देखी जाती है। पार्वती जिस स्थान पर तपस्या कर रही थी, वह स्थान पार्वती के तप के प्रभाव से अत्यन्त शांत और पवित्र तपोवन बन गया था। ऐसे तपोवन में दर्शनमात्र से ही मनुष्य पवित्र हो जाता था।

धीरे-धीरे पार्वती ने फल अर्थात् शिव को प्राप्त करने के लिए अपने शरीर की कोमलता को न गिनते हुए कठिन तप के लिए आचरण करना आरंभ कर दिया तपस्या प्रारंभ करने से पहले पार्वती का शरीर इतना कोमल था और अब वही पार्वती उसी कोमल शरीर से मुनियों की अपेक्षा और भी अधिक कठोर तप करने लगी थी। पार्वती द्वारा किए गये तप का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं—

ग्रीष्म ऋतु में प्रज्वलित चार अग्नियों के मध्य स्थित निर्मल मुस्कान वाली और सुन्दर कमर वाली पार्वती आँखों को चकाचौंध कर देने वाली सूर्य की चमक को जीतकर दूसरी ओर न देखती हुई एकटक सूर्य को ही देखा करती थी। सूर्य की ओर मुख करके तपस्या करने से पार्वती का सौंदर्य और अधिक बढ़ गया। पार्वती के नेत्रों के प्रान्तभाग अवश्य काले हो गए किंतु इस कालिमा से भी उनके सौंदर्य में कुछ न्यूनता नहीं आई।

केवल बिना माँगे प्राप्त जल और रसमय चन्द्रमा की किरणें उस पार्वती का व्रतान्त भोजन वृक्षों की जिविका के साधनों से अलग नहीं हुआ। कवि कहते हैं कि ग्रीष्म ऋतु के अंत में अत्यंत तपी हुई पृथ्वी के ऊपर जब वर्षा की प्रथम बूंदें गिरती हैं, तो संतप्त पृथ्वी से भाप निकलने लगती है। ठीक इसी प्रकार तप संबंधी पंचाग्नि से अत्यंत सन्तप्त शरीर वाली पार्वती के ऊपर भी जब प्रथम वर्षा की बूँदें गिरती थी, तब उसके शरीर से भी भाप निकलती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि उसका शरीर इतना अधिक तप्त हो गया था कि उसकी गर्मी के कारण शरीर पर गिरा हुआ वर्षा का जल वाष्प के रूप में परिवर्तित हो जाता था।

स्थिताः क्षणं पक्षमसु ताडिताधराः, पयधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः ।

वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे चिरेण नाभिं प्रथुमोदविन्दवः ।।

उपर्युक्त श्लोक के माध्यम से कवि पार्वती के वर्षाकालीन तप का वर्णन करते हैं प्रथम जल की बूंदे उस पार्वती की पलकों पर क्षण भर के लिए टिकी, अधरों पर आघात पहुँचाया, स्तनों के उन्नत अग्रभाग पर टकराने के कारण चूर-चूर हुई, उदररेखाओं पर गिरी और बहुत देर से नाभि को करती है। वर्षा ऋतु में भी पार्वती का तप अत्यन्त प्रशंसनीय ही था। वर्षा ऋतु में जब लगातार जल बरसा करता था, वायु भी बड़ी तीव्र गति से बहा करती थी, बिजलियाँ भी चमका करती थी, तब ऐसे भीषण समय में भी पार्वती खुले स्थान में पर्वत की चट्टान पर शयन किया करती थी। इसके हेमन्त ऋतु में भी उसकी तपस्या दर्शनीय ही थी वह काँपते हुए पत्र रूपी अधरोष्ठ से शोभायमान मुख से, बर्फ की वर्षा से नष्ट हुई कमल रूपी वाले जलों में मानो (पुनः नए) कमल की परंपरा को बनाती थी।

अपने आप वृक्षों से गिरे हुए पत्तों पर निर्वाह करना निश्चित रूप से तपस्या की अन्तिम सीमा होती है, परन्तु उसने तो वह भी छोड़ दिया, इसलिए पुरातत्ववेत्ता उस मधुरभाषिणी पार्वती को अपर्णा इस नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार अपने कठोर तप द्वारा पार्वती ने अन्य सिद्ध पुरुषों के तप को भी नीचा दिखा दिया। इसी समय पार्वती की कठोर तपस्या से प्रभावित होकर स्वयं शिवजी जटाधारी तपस्वी के वेष में पार्वती की परीक्षा लेने के लिए पार्वती के तपस्या स्थल पर आते हैं।

इसके बाद कृष्ण मृगचर्म और पलाश दण्ड धारण करने वाले, गम्भीर वाणी में बोलने वाला, ब्रह्ममय तेज से देदीप्यमान सा कोई जटाधारी शरीर धारण किये हुए ब्रह्मचर्य आश्रम के समान तपोवन में प्रविष्ट हुआ।

तपस्वी जनों द्वारा धार्मिक कार्यों को निष्पन्न करने के लिए आषाढ़ के महीने में पलाश के दण्ड को धारण किया जाता है, इसलिए इस पलाश दण्ड का ही नाम आषाढ़ पड़ गया। ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिए भी पलाश दण्ड धारण किया जाना विधि के समान है, अतः ब्रह्मचारी के देश को इसलिए धारण किया था जिससे कि शिवजी को कोई पहचान न पाए।

6.4.2 कुमारसम्भव (पञ्चम सर्ग) के काव्यांश

इस सर्ग में कवि ने पार्वती द्वारा शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए तप किया। अकस्मात् एक दिन शिवजी वहाँ एक तेजस्वी ब्रह्मचारी के रूप में प्रकट होते हैं। पार्वती नहीं जानती कि यह ब्रह्मचारी कौन है और किसलिए आया है? वह ब्रह्मचारी वेशधारी शिवजी की विधिवत् अतिथि सेवा करती हैं। आतिथ्य स्वीकार कर, क्षणभर विश्राम कर, सरल नेत्रों से पार्वती को देखते हुए पार्वती से संवाद करते हैं, इसी प्रसंग से उद्धृत कुछ श्लोक यहाँ आपके अध्ययन के लिए प्रस्तुत किए गए हैं—

प्रसंग — महाकवि कालिदास द्वारा रचित कुमारसम्भव नामक महाकाव्य के पञ्चम सर्ग से यह श्लोक उद्धृत है। ब्रह्मचारी वेशधारी भगवान् शिव पार्वती की कठोर तपस्या से प्रभावित होने पर भी पार्वती से अपने सम्बन्ध में और परीक्षा करने के लिए पार्वती की तपस्यास्थली में पहुँच जाते हैं। पार्वती से अतिथिसत्कार ग्रहण करने के पश्चात् उसकी तपस्या के प्रयोजन के विषय में पूछते हैं —

कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः।

अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तपःफलं स्यात् किमतः परं वद॥ कुमा०5/41

अन्वय — प्रथमस्य वेधसः कुले प्रसूतिः, वपुः त्रिलोकसौन्दर्यम् इव उदितम्, ऐश्वर्यसुखम् अमृग्यं, वयः नवम्, अतः परं किं तपःफलं स्यात्? वद।

कठिन शब्द —

वेधसः = प्रजापति ब्रह्मा के, कुले = उच्च वंश में, प्रसूतिः = जन्म, वपुः = शरीर, त्रिलोकसौन्दर्यम्=तीनों लोकों का सौन्दर्य, इव=तुल्य, समान (मानो), उदितम्=प्रकट हुआ है, ऐश्वर्यसुखम्=सत्ता या धन दौलत का सुख, अमृग्यम् = खोजने योग्य नहीं, वयः=आयु, नवम्=नई, अतः परम्=इसके आगे, किम्=क्या, तपःफलम्=तप का फल, स्यात्=हो, वद=बोलो।

प्रथम वेधा = प्रथम ब्रह्मा। ब्रह्म पुराण के अनुसार पर्वतेश्वर हिमालय प्रथम ब्रह्मा की परम्परा में आते हैं। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार समस्त ब्रह्माण्ड के रक्षक और निर्माता ब्रह्मा सभी देवताओं से पूर्व उत्पन्न हुए। पुराणों के अनुसार इसी ब्रह्मा से बाद में अनेक ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

अनुवाद — हे पार्वती! प्रथम ब्रह्मा के उच्च कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है। तीनों लोकों के (सम्मिलित) सौन्दर्य के रूप में मानो तुम्हारा शरीर प्रकट हुआ है। ऐश्वर्य का सुख भी मृग्य (खोजने योग्य) नहीं है अर्थात् स्वाभाविक रूप से प्राप्त है। आयु भी तुम्हारी नई है। इन सब के बाद भी कौन सा तपस्या का फल हो सकता है? बोलो।

व्याख्या — ब्रह्मचारी वेशधारी भगवान् शंकर पार्वती से पूछते हैं कि हे पार्वती, हिरण्यगर्भ नामक प्रथम ब्रह्मा के वंश में पर्वतेश्वर हिमालय के घर में अर्थात् अत्यन्त सम्मान योग्य परिवार में तुम्हारा जन्म हुआ है; अतः अच्छे कुल में जन्मसम्बन्धी आवश्यकता के लिए तप का औचित्य नहीं है। लोग सुन्दर शरीर की प्राप्ति के लिए भी तप करते होंगे, परन्तु तुम्हें तो इतना सुन्दर शरीर (वपु) मिला है, जो मानो तीनों लोकों के सौन्दर्य को इकट्ठा कर तुम्हें प्रकट कर दिया हो। कुछ लोग धन दौलत, राजसत्ता आदि के सुख के लिए भी तप करते हैं पर इस प्रकार का सुख भी तुम्हें बिना ढूँढे मिला है, तुम राजा के घर में जन्मी हो; अतः ऐसा सुख स्वाभाविक रूप से तुम्हें प्राप्त है इसलिए इस सुख हेतु भी तुम्हारी तपस्या उचित प्रतीत नहीं होती। वृद्ध लोग नई उम्र या अवस्था के लिए तपस्या करते होंगे, उसकी भी तुम्हें आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुम अभी-अभी नवीन आयु को प्राप्त हुई हो। इस प्रकार अच्छे कुल में जन्म, सुन्दरता की प्राप्ति, ऐश्वर्य-सुख, नवीन अवस्था से भी परे तुम्हारी कोई इच्छा हो सकती है जिसके लिए तुम तप कर रही हो, उसे बताओ।

व्याकरण —

- वेधसः — वेधस् (पुं०) षष्ठी विभक्ति, एकवचन।
 प्रसूतिः — प्र उपसर्ग, सू धातु, स्त्रीलिङ्ग में वितन् प्रत्यय।
 वपुः — वपुस्, नपुं०, वपुः, वपुषी, वपूषि।
 त्रिलोकसौन्दर्यम् — त्रयाणां लोकानां सौन्दर्यम् तद्धितार्थ० तत्पुरुष समास।
 उदितम् — उत् + इ धातु, क्त प्रत्यय, नपुं०।

ऐश्वर्यसुखम्	— ऐश्वर्यस्य सुखम् (ष० त०)।
अमृग्यम्	— न मृग्यम् (मृग अन्वेषणे चु० ऋदुपधात् क्यप्)।
वयः	— वयस् (नपुं०)।
स्यात्	— अस् धातु विधिलिङ् प्र०पुरुष, एकवचन।
वद	— वद् धातु, लोट्, म०पु०, एकवचन।

विशेष —

- 1) 'पार्वती का शरीर मानो तीनों लोकों के सौन्दर्य के रूप में प्रकट हुआ है', इस कथन में सौन्दर्य की अधिकता के कारण स्थूल शरीर पर सूक्ष्म सौन्दर्य की ही सम्भावना कर दी गयी है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।
- 2) इस प्रसंग में पठित सभी श्लोकों में प्रसाद गुण एवं वैदर्भी रीति है जो कि कालिदास के काव्यों की विशेषता है। इन सभी श्लोकों के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण, रगण होने से वंशस्थ छन्द है— 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ'।

बोध प्रश्न 4

क) पार्वती को तपस्या से पूर्व क्या-क्या वस्तुयें स्वाभाविक रूप से प्राप्त थीं?

.....

.....

ख) 'न ढूँढने योग्य' इसके लिए श्लोक में कौन सा शब्द प्रयुक्त हुआ है?

.....

.....

ग) कालिदास के काव्यों की दो विशेषतायें बताइए।

.....

.....

घ) अस् धातु, विधिलिङ्, प्र० पु०, एकवचन में क्या रूप बनेगा?

.....

.....

ङ) वपुः और वयः में व्याकरण-सम्बन्धी एक समानता बताइए?

.....

.....

प्रसंग — पूर्ववत्

श्लोक 2

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः, पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः।
अथोपयन्तारमलं समाधिना, न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।

कुमा० 5/45

अन्वय—दिवं प्रार्थयसे यदि, तर्हि श्रमः वृथा, तव पितुः प्रदेशाः देवभूमयः। अथ उपयन्तारं प्रार्थयसे (तर्हि) समाधिना अलम् रत्नं न अन्विष्यति, हि तत् मृग्यते।

कठिन शब्द —

दिवम् = स्वर्ग को, प्रार्थयसे = इच्छा करती हो, तर्हि = तो, प्रदेशाः = शासित क्षेत्र, देवभूमयः = देवों की भूमि या स्वर्ग, अथ = और, उपयन्तारम् = वर (पति) को, समाधिना = तप द्वारा, अलम् = बस (या व्यर्थ), अन्विष्यति = ढूँढ़ता है, हि = क्योंकि, तत् = वह, मृग्यते = ढूँढ़ा जाता है।

देवभूमि = हिमालय का क्षेत्र अत्यन्त पवित्र माना जाता है। यह स्वर्ग तुल्य है। कालिदास मेघदूत में, भारवि किरातार्जुनीयम् में हिमालय क्षेत्र में स्वर्ग के देवताओं, अप्सराओं की गतिविधियों की चर्चा करते हैं।

दिवम् = यद्यपि द्युलोक के लिए यह शब्द प्रचलित है परन्तु कवि ने यहाँ स्वर्ग के लिए इसका प्रयोग किया है।

उपयन्तारम् = उप+यम् धातु का अर्थ विवाह करना होता है। इससे बना यह शब्द यहाँ दुल्हा (वर) के लिए प्रयुक्त है।

अनुवाद —हे पार्वती! यदि तप द्वारा स्वर्ग की इच्छा करती हो तो श्रम व्यर्थ है, क्योंकि तुम्हारे पिता के प्रदेश (राज्यसीमा) देवभूमि (स्वर्ग) तुल्य है और यदि तप से वर की कामना है, तो इसके लिए समाधि (तप) की आवश्यकता नहीं, क्योंकि रत्न स्वयं नहीं ढूँढ़ता है, वह ढूँढ़ा जाता है।

व्याख्या —पार्वती की तपस्या के अन्य प्रयोजनों को स्वयं ही सम्भावना करके उसकी व्यर्थता बताते हुए ब्रह्मचारी रूपधारी शंकर पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती! कुछ लोग स्वर्गप्राप्ति के लिए भी तपस्या करते हैं। यदि तुम भी स्वर्गप्राप्ति के लिए तप कर रही हो तो तुम्हारा यह परिश्रम आवश्यक नहीं है। क्योंकि तुम्हारे पिताजी जिस भूमि पर शासन करते हैं यह स्वयं देवभूमि (स्वर्ग) है या स्वर्गतुल्य है। इस भूमि पर स्वर्ग के देवता भी आकर रहते हैं या तपस्या आदि करते हैं। समस्त स्वर्ग—सुख तुम्हारे पिताजी के राज्य में प्राप्त है।

अनेक कन्यायें सर्वगुणयुक्त अच्छे वर (पति) की प्राप्ति के लिए भी तपस्या करती हैं। तुम यदि अच्छे वर की प्राप्ति के लिए तप कर रही हो तो यह भी उचित नहीं है। इसके लिए तुम्हें समाधि लगाने की जरूरत नहीं है। रत्न अपने लिए स्वामी की खोज नहीं करता, रत्न को चाहने वाला स्वयं रत्न की खोज करता है। तुम रत्न हो, सर्वगुणसम्पन्न कन्या रत्न हो। तुम्हें वर (स्वामी) खोजने की आवश्यकता नहीं है। विश्व का जो भी श्रेष्ठ वर होगा, तुम्हें अपने आप ढूँढ़ लेगा। इसके लिए तुम्हें तपस्या की आवश्यकता नहीं है।

व्याकरण —

देवभूमयः — देवानां भूमयः (ष०त० समास)।

उपयन्तारम् — उप+यम्+तृच्=उपयन्ता, उपयन्तारम्, द्वि०वि०, ए०व०।

अन्विष्यति — अनु+इष् परस्मैपद, लृट् लकार, प्र०पुरुष, ए०व०, कर्तृवाच्य की क्रिया।

मृग्यते — मृग+यक् आत्मनेपद, प्र०पु०, ए०व०, कर्मवाच्य की क्रिया। यहाँ तत् (रत्न) कर्म है।

कर्तृवाच्य में कर्ता में प्रथमा, कर्म में द्वितीया, क्रिया कर्ता के अनुसार। कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा, क्रिया कर्म के अनुसार रहती है। “तत् (रत्न) मृग्यते (केनापि)” में कर्मवाच्य है।

अलम् के योग में (मना करने के अर्थ में) यहाँ समाधि में तृतीया हुई है।

विशेष — ‘पार्वती को तप की आवश्यकता नहीं है। रत्न ढूँढता नहीं ढूँढा जाता है’ इस वाक्य में पूर्वकथन को प्रकारान्तर से समर्थन दिया गया है; अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

बोध प्रश्न 5

क) ब्रह्मचारी द्वारा पार्वतीतपस्या के कौन से दो फलों की सम्भावना यहाँ की गयी है?

.....

.....

ख) इस श्लोक में प्रकारान्तर से ‘रत्न’ किसे कहा गया है?

.....

.....

ग) वर के लिए श्लोक में क्या शब्द प्रयुक्त किया गया है?

.....

.....

घ) ‘अन्विष्यति’ किस वाच्य की क्रिया है?

.....

.....

प्रसंग — पार्वती की सखी कहती है कि पता नहीं शंकर कब इस पर दया करेंगे? इसको सुनकर शंकर (ब्रह्मचारी) स्वयं पार्वती से पूछते हैं कि यह सच कह रही है या परिहास कर रही है? पार्वती कहती है कि हे वेदज्ञ ! जैसा आपने सुना है ऐसा ही है, शिवप्राप्ति हेतु ही तपस्या है। इस सत्य को जानकर ब्रह्मचारी शिव के बीभत्स रूपों की चर्चा करते हैं और उसके उद्देश्य की प्राप्ति में अपनी असहमति व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं कि सर्प आदि लपेटे हुए हाथ से जब वे पहली बार तुम्हारा स्पर्श करेंगे, तो उस समय तुम्हें कैसा लगेगा?

अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं नु ते करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः।
करेण शम्भोर्बलयीकृताहिना सहिष्यते तत् प्रथमावलम्बनम्॥

कुमा० 5/66

अन्वय—हे अवस्तुनिर्बन्धपरे! आमुक्तविवाहकौतुकः अयं ते करः बलयीकृताहिना शम्भोः करेण तत्प्रथमावलम्बनं कथं नु सहिष्यते?

कठिन शब्द —

अवस्तुनिर्बन्धपरे = हे व्यर्थ की वस्तु के लिए आग्रह करने वाली, आमुक्तविवाहकौतुकः = विवाहकालीन मांगलिक वस्तुओं को धारण किया हुआ, अयम् = यह, करः = हाथ, बलयीकृताहिना = सांप लपेटे हुए हाथ के द्वारा, शम्भोः = शंकर के, करेण = हाथ से, तत् = वह, प्रथमावलम्बनम् = प्रथम बार ग्रहण किया जाना, कथं = कैसे, नु = निश्चय से, सहिष्यते = सहन करेगा।

अवस्तुनिर्बन्ध = चिताभस्म आदि अशुभ वस्तुओं के कारण शिव को यहाँ अवस्तु कहा है। यथार्थ में शिव के लिए ये पवित्र वस्तुयें हैं। निर्बन्ध = आग्रह। पार्वती की कठोर तपस्या शिव के प्रति आग्रह (हठ) है।

- विवाहकौतुक = भारतीय परम्परा में विवाह के समय दुल्हन को जो विविध वस्तुयें पहनाई जाती हैं उनके लिए यह शब्द है।
- प्रथमावलम्बन = विवाह के समय सम्पन्न कराया जाने वाला पाणिग्रहण विधि जिसमें वर के हाथ में बधू का हाथ दिया जाता है।

अनुवाद —हे तुच्छ वस्तु के लिए हठ करने वाली पार्वती! विवाह के समय हस्तसूत्र, मंगल सूत्र, कंगन आदि को धारण किया हुआ यह तुम्हारा हाथ, सांप लपेटे हुए शंकर के हाथ से जब प्रथम बार स्पृष्ट होगा, (छुआ जायेगा) तब कैसे सहन कर सकेगा? अर्थात् तुम्हारा हाथ शंकर के हाथ को कैसे सहन कर पायेगा?

व्याकरण —

- अवस्तुनिर्बन्धपरे — न वस्तु अवस्तु, तस्मिन् निर्बन्धः = अवस्तु-निर्बन्धः, तस्मिन् परा (तत्परा), सम्बोधन में परे।
- आमुक्तविवाहकौतुकः — आमुक्तः (धृतः) विवाहकौतुकः येन सः।
- बलयीकृताहिना — अवलयः वलयः यथा सम्पद्यते तथा कृतः इति बलयीकृतः। वलयीकृतः अहिः (सर्पः) येन तेन।
- प्रथमावलम्बनम् — प्रथमं च तत् अवलम्बनम् इति कर्मधारय समास।
- नु — निश्चयार्थक या प्रश्नार्थक अव्यय।
- सहिष्यते — सह् + इट् + लृट् लकार, प्र०पु०, एकवचन।

बोध प्रश्न 6

क) पद्य में शिव के लिए कौन सा विशेषणात्मक सम्बोधन पद प्रयुक्त है?

.....
.....

ख) पार्वती एवं शंकर के हाथों की एक समानता बताइए।

.....
.....

ग) 'अवलम्बन' में क्या प्रत्यय है?

.....
.....

घ) 'सह धातु' आत्मनेपदी है या परस्मैपदी?

.....
.....

प्रसंग —ब्रह्मचारी वेशधारी शंकर पार्वती की परीक्षा हेतु पुनः अमङ्गलवेशधारी शंकर और मांगलिक वेशधारी वधू (पार्वती) की तुलना करते हुए कहते हैं कि दोनों में कोई समन्वय या संगति नहीं है, अतः शिवप्राप्ति की इच्छा छोड़ ही देनी चाहिए —

श्लोक 4

त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं, कदाचिदेते यदि योगमर्हतः।

वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं, गजाजिनं शोणितविन्दुवर्षि च॥

कुमा० 5/67

अन्वय —त्वमेव स्वयं तावत् परिचिन्तय, कलहंसलक्षणं वधूदुकूलं (तथा) शोणितविन्दुवर्षि गजाजिनं च, एते कदाचिद् योगम् अर्हतः यदि?

कठिन शब्द एवं सन्दर्भ—

त्वम् = तुम, एव = ही, तावत् = तब तक (थोड़ा), परिचिन्तय = सोचो, कलहंसलक्षणम् = मधुर ध्वनि करने वाले विशेष प्रकार के हंसों के समान चिह्न वाला। (अर्थात् अत्यन्त सुन्दर), वधूदुकूलम् = नव वधू का रेशमी वस्त्र, शोणितविन्दुवर्षि = खून के बूँद को बरसाने वाला, गजाजिनम् = हाथी का अजिन अर्थात् चर्म, एते = ये दोनों विपरीत प्रकार के वस्त्र, कदाचित् = कभी, योगम् = संगति को, अर्हतः = योग्य हैं, यदि = यदि (तो या क्या)।

— वधूदुकूलम् = विवाह के समय नव वधू को धारण करायी जाने वाली रेशमी साड़ी एवं दुपट्टा के लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। ग्रन्थि.बन्धन.विधि में इसके आंचल का उपयोग किया जाता है।

— शोणितविन्दुवर्षि गजाजिनम् —भगवान् शंकर ने गजासुर को मारकर उसके चमड़े को अपने शरीर में लपेट कर नृत्य किया था। कालिदास ने ऐसी चर्चा मेघदूत (38 पूर्वमेघ) में भी की है। मालतीमाधव (5/23 अंक) में भी भवभूति ने इसका उल्लेख किया है। यहाँ अभिप्राय यह है कि विवाह के समय ही यह समस्या होगी, तो ऐसे शंकर की गोद में बैठना तो और भी बीभत्स होगा।

अनुवाद —हे गौरी! तुम ही स्वयं थोड़ा विचार करो कि कलहंस के समान सुन्दर नववधू का रेशमी वस्त्र तथा खून की बूँदें टपका रहा गजचर्म, ये दोनों क्या कभी साथ-साथ रह सकती हैं, इनका योग बैठ सकता है? अर्थात् नहीं।

व्याख्या —ब्रह्मचारी पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती! तुम ही थोड़ा अपनी बुद्धि से विचार कर के देखो कि शिव-पार्वती का जोड़ा कितना बेढंगा है। विवाह के समय वर एवं वधू के वस्त्रों का ग्रन्थि-बन्धन किये जाते समय एक तरफ तुम्हारा कलहंसों के समान अत्यन्त सुन्दर रेशमी वस्त्र (साड़ी आदि) होगा तो जिससे एक तरफ रक्त टपक रहा हो, ऐसा शंकर का गजचर्म होगा। तुम स्वयं सोचो कि इन दो प्रकार के वस्त्रों की कोई संगति होगी? कितना भद्दा लगेगा; लोग भी हँसेंगे। इसलिए हे गौरी! शंकर को वर रूप में पाने की इच्छा छोड़ दो।

व्याकरण —

- परिचिन्तय — परि + चिन्त + णिच् लोट्, म०पु०, ए० वचन।
कलहंसलक्षणम् — कलहंसस्य लक्षणम् इव लक्षणं यस्य तत् (ब०व्री० समास)।
शोणितविन्दुवर्षि — शोणितविन्दून् वर्षति इति (उपपद तत्पुरुष)।
गजाजिनम् — गजस्य अजिनम् (ष०त०पु०)।
अर्हतः—अर्ह + लट् प्र०पु०, द्विवचन।

विशेष —

ग्रन्थिबन्धन के समय उपस्थित होने वाली दो विषम वस्तुओं के वर्णन से यहाँ विषम नाम का अलंकार है।

बोध प्रश्न 7

क) पद्य में दो विषम वस्तुओं का वर्णन कर कब इसके हास्यास्पद होने की स्थिति वर्णित है?

.....
.....

ख) गजाजिन क्या है?

.....
.....

ग) किससे स्वयं चिन्तन हेतु कहा गया है?

.....
.....

घ) योग पद का यहाँ क्या अर्थ है?

.....
.....

ङ) अर्हतः किस वाच्य की क्रिया है? कर्तृवाच्य / कर्मवाच्य

.....
.....

प्रसंग —शिव से विवाह के लिए दृढ निश्चय वाली पार्वती से ब्रह्मचारी कहते हैं कि इस समय दो वस्तुयें शोचनीय दशा को प्राप्त हो गई हैं। संसार को आनन्द देने वाला चन्द्रमा शिव जटाओं में फंसकर निस्तेज हो गया है तो दूसरी ओर जिसे देखकर संसार को जो थोड़ा बहुत सुख मिलता था वह तुम भी उसी शिव के चक्कर में पड़ने जा रही हो। हे पार्वती! थोड़ा तो सोचो कि उस शिव में एक वर में होने योग्य कोई भी गुण है क्या?

श्लोक 5

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता, दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।

वरेषु यद् बालमृगाक्षि! मृग्यते, तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने॥

कुमा० 5/72

अन्वय —वपुः विरूपाक्षम्, अलक्ष्यजन्मता, वसु दिगम्बरत्वेन निवेदितम्। हे बालमृगाक्षि! वरेषु यत् मृग्यते तत् त्रिलोचने व्यस्तमपि अस्ति किम्?

कठिन शब्द —

वपुः = शरीर, विरूपाक्षम् = विकृत आँखों वाला, अलक्ष्यजन्मता = जन्म के विषय में कुछ पता न होना, वसु = धन, दिगम्बरत्वेन = दिशा रूप वस्त्र वाला होने से, निवेदितम् = सूचित कर दिया है, बालमृगाक्षि = हे बाल मृग के आँखों के समान आँखों वाली!, मृग्यते = ढूँढा जाता है, तत् = वह, त्रिलोचने = तीन लोचन (नेत्र) वाले शिव में, व्यस्तम् = एक (समस्त का विपरीत), अपि = भी, अस्ति किम् = है क्या?

- विरूपाक्षम् = विरूप आँख वाला। कामदेव को भस्म करने के लिए एक ज्योति प्रकट हुई जो तीसरी आँख के रूप में तिरछी प्रकट हुई थी।
- अलक्ष्यजन्मता = जन्म का लक्षित न हो पाना। शिव अनादि पुरुष हैं, अतः जन्म का पता न चलना स्वाभाविक है।
- दिगम्बरत्व = वैराग्य की चरम सीमा, जहाँ सब कुछ एक रूप हो जाता है। महायोगी शिव का ऐसा होना विचित्र नहीं है।

अनुवाद —हे गौरी! उस शंकर का शरीर विकृत (विषम) आँखों वाला है, उसकी जन्मसम्बन्धी कोई जानकारी नहीं है, वह कितना धनवान् है यह उसके दिगम्बर होने से ही पता चल जाता है। हे बालमृग के आँखों के समान आँखों वाली पार्वती! वरों के विषय में जो (गुण) देखे जाते हैं, उनमें से एक भी क्या शंकर में है? अर्थात् नहीं है।

व्याख्या—हे पार्वती! कन्या वाले जब वर को देखने जाते हैं तो वे ध्यान से वर के शरीर को, उसके कुल खानदान को और खास करके उसके धन, दौलत को देखते हैं;

जिससे कि उनकी बेटी शादी के बाद सुख से रह सके। शंकर का शरीर विषम एवं विकृत नेत्रों से युक्त है अर्थात् असुन्दर है। जहाँ तक जन्म एवं कुल की बात है तो उसका कुछ भी अता-पता नहीं है। धन, दौलत की तो बात ही बेकार है। पहनने के लिए कपड़ा तक उसके पास नहीं है। नंगा ही घूमता फिरता है। हे बालमृगनयनी! वरचयन के लिए जो गुण ढूँढ़े जाते या देखे जाते हैं वह उस त्रिलोचन शंकर में कुछ भी नहीं है। एक गुण भी नहीं है। अतः शिव को पतिरूप में पाने की इच्छा छोड़ो। शिव प्रकारान्तर से पुनः पार्वती की परीक्षा ले रहे हैं।

व्याकरण —

- विरुपाक्षम् — विकृतरूपाणि अक्षिणि यस्य तत् (वपुः का विशेषण) बहु०।
अलक्ष्यजन्मता — न लक्ष्यम् अलक्ष्यम्, अलक्ष्यं च तत् जन्म इति अलक्ष्यजन्म, तस्य भावः के अर्थ में तत् प्रत्यय।
दिगम्बरत्वेन — दिशः एव अम्बरं यस्य सः, तस्य भावः अर्थ में त्व प्रत्यय। उसके द्वारा
निवेदितम् — नि + विद् + णिच् + क्त (कर्मवाच्य में क्त प्रत्यय)।
बालमृगाक्षि — बालश्चासौ मृगः बालमृगः, तस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा बालमृगाक्षी। सम्बोधन में बाल क्षि। कर्मधारय एवं बहुव्रीहि।
मृग्यते — मृग् + यक् + ते (कर्म वा०)।
व्यस्तम् — वि + असु + क्त।

बोध प्रश्न 8

क) वर में कम से कम कौन से तीन गुण होने चाहिए?

.....
.....

ख) 'बालमृगाक्षी' पद द्वारा पार्वती के आँखों की कौन सी दो विशेषतायें सूचित की गई हैं?

.....
.....

ग) भाव अर्थ में प्रयुक्त दो प्रत्ययों का उल्लेख करें।

.....
.....

घ) बहुव्रीहि समास के दो पद ढूँढ़कर नीचे लिखें।

.....

अभ्यास प्रश्न—

महाकवि कालिदास के महाकाव्यों की विशेषताओं को अपने शब्दों में लिखिए।

6.5 सारांश

इस इकाई में आपने कालिदास के महाकाव्यों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आपने रघुवंश और कुमारसंभव के महत्वपूर्ण तत्वों का अध्ययन किया। रघुवंश का कथावस्तु, पात्रों का चरित्र—चित्रण, रघुवंश का सर्गानुसार कथासार, और कुमारसंभव नामक महाकाव्य के प्रथम सर्ग में उमा (पार्वती) का जन्म, द्वितीय सर्ग में तारकासुर का उपद्रव एवं देवताओं का ब्रह्मा जी के पास जाना तथा इन्द्र द्वारा कामदेव को शिवजी के पास भेजा जाना, तृतीय सर्ग में शिव द्वारा कामदेव का भस्म किया जाना, चतुर्थ सर्ग में कामदेव की पत्नी रति का विलाप, पञ्चम सर्ग में पार्वती की तपस्या एवं शिव द्वारा पार्वती की परीक्षा, छठे सर्ग में पार्वती को शिव के लिए देने का निश्चय, सप्तम सर्ग में शिव-पार्वतीविवाह एवं अष्टम सर्ग में कुमार का जन्म वर्णित है, इसे जाना साथ ही पंचम सर्ग के अन्तिम भाग में पार्वती तपस्या के पश्चात् उनकी परीक्षा लेने पहुँचे ब्रह्मचारी वेशधारी भगवान् शंकर एवं तपस्विनी पार्वती के बीच संवाद के कुछ अंश को आपने जाना। इस अध्ययन की प्रक्रिया में आपने श्लोक का अनुवाद और व्याख्या करना सीखा। अब आप जान गए हैं कि संस्कृत काव्य का अनुवाद या व्याख्या करने से पहले उसका अन्वय करना और कठिन शब्दों के एवं प्रसंगों का अर्थ खोजना आवश्यक है। व्याख्या के उपरान्त कविता की भाषा, उक्ति एवं भाव-सौन्दर्य पर टिप्पणी करना भी अपेक्षित है। अन्य कविताओं का अध्ययन भी आप इसी पद्धति से करते हुए उनके काव्य-सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। अगली इकाई में आप रघुवंश के प्रथम सर्ग के श्लोकों का अध्ययन करेंगे।

6.6 शब्दावली

किंवदन्ती	— समाज में चली आ रही बातें अथवा जानकारी।
औचित्य	— उचित होना, ठीक होना।
स्पृष्ट	— छुआ हुआ, स्पर्श हुआ।
दिगम्बर	— बिना कपड़े पहने हुए (दिशायेँ ही हैं वस्त्र जिसका)।
वचनीय	— लोकनिन्दा या लोकोपवाद।
अधर	— नीचे का होंठ।
वल्कल	— वनस्पतियों से बने हुए वस्त्र, पेड़ का छाल।
सौधः	— भवन
चक्षुष्मताम्	— नेत्र वालों के
प्रसीद	— प्रसन्न होना
तुतोष	— सन्तुष्ट किया
आयुधम्	— अस्त्र
तुरङ्गः	— घोड़ा
हेम्नः	— सोने की
प्रसीदति—	प्रसन्न होती है
वयः	— आयु
हिमांशुः	— चन्द्रमा

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. रघुवंशमहाकाव्यम्, डॉ. कृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011
2. रघुवंशम्, प्रो. हरि दामोदर वेलणकर, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्, नवदेहली, 2011
3. कुमारसम्भव (1-5 सर्ग) लेखक – कालिदास
4. व्याख्याकार – श्रीकृष्ण मुनि त्रिपाठी
5. चौखम्बा . संस्कृत प्रतिष्ठान, बंगलों रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डा० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी।
7. कालिदास ग्रन्थावली, ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2012
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, कस्तूरबा नगर, सिगरा, वाराणसी, 2001
9. अमरकोश, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, बंगलो रोड., दिल्ली, 2011
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009
11. संस्कृतवाङ्मय का बृहद् इतिहास, (चतुर्थ खण्ड), प्रो. राधवल्लभ त्रिपाठी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1967

6.8 बोध / अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

- 1 (i) (क)मागधी (ii) (ग) प्रो. लक्ष्मीधर कल्ला (iii) (ख) रघुवंश
- 2 कालिदास
- 3 उपमा कालिदासस्य।

बोध प्रश्न 2

- 1 (i) सत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) सत्य (v) असत्य (vi) सत्य
- 2 महाकवि कालिदास
- 3 19 सर्ग, 1569 श्लोक
- 4 31 राजाओं का

बोध प्रश्न 3

- 1 (i) अश्वमेध (ii) दिलीप (iii) नन्दिनी (iv) श्रीराम (v) मगध
- 2 रघु
- 3 रघु

4 दिलीप

बोध प्रश्न 4

- क) श्रेष्ठ कुल में जन्म, अलौकिक सौन्दर्य, ऐश्वर्य सुख, नवीन अवस्था
- ख) अमृत्यम्
- ग) प्रसाद गुण और वैदर्भी रीति
- घ) स्यात्
- ङ) दोनों सकारान्त नपुंसकलिंग वाले।

बोध प्रश्न 5

- क) स्वर्ग की कामना एवं पतिप्राप्ति
- ख) पार्वती को
- ग) उपयन्ता
- घ) कर्तृवाच्य

बोध प्रश्न 6

- क) अवस्तुनिर्बन्धपरे
- ख) दोनों ने हाथ में कुछ न कुछ धारण किया हुआ है
- ग) ल्युट् (अन) प्रत्यय
- घ) आत्मनेपदी।

बोध प्रश्न 7

- क) विवाहकालीन ग्रन्थि-बन्धन के समय
- ख) गजासुर का चर्म
- ग) पार्वती से
- घ) संगति बैठना
- ङ) कर्तृवाच्य।

बोध प्रश्न 8

- क) शारीरिक सुन्दरता, अच्छा कुल एवं सम्पन्नता
- ख) सुन्दर होना व चंचल होना
- ग) त्व एवं तल् प्रत्यय
- घ) विरूपाक्षम् व बालमृगाक्षि।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 7 रघुवंशम् (प्रथम सर्ग) श्लोक 1-10

इकाई की रूपरेखा

- 7.0 उद्देश्य
- 7.1 प्रस्तावना
- 7.2 काव्यांश की व्याख्या
 - 7.2.1 मंगलाचरण
 - 7.2.2 सूर्यवंश का प्रभाव तथा कवि की विनम्रता
 - 7.2.3 पूर्व कवियों की अधर्मणता
 - 7.2.4 रघुकुल के राजाओं की विशेषता
 - 7.2.5 विद्वानों से रघुवंशी राजाओं के चरित्र को सुनने का आग्रह
- 7.3 सारांश
- 7.4 शब्दावली
- 7.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 7.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- रघुवंश महाकाव्य की विशेषता को जान सकेंगे।
- रघुवंशी राजाओं की प्रजावत्सलता तथा उनके गुणों को जान सकेंगे।
- कालिदास की विनम्रता के बारे में जान सकेंगे।
- रघुवंशी राजाओं की जीवनचर्या के बारे में जान सकेंगे।
- कालिदास की लेखन शैली से परिचित हो सकेंगे।
- रघुवंश महाकाव्य के राष्ट्रीय स्वरूप का परिचय पा सकेंगे।
- प्राचीन भारतीय राजाओं के चरित्र, त्याग और गुणग्राहिता को जान सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि कालिदास शृंगार व लालित्य के कवि हैं। इतिहासकारों ने उन्हें राष्ट्रकवि की संज्ञा दी है। कालिदास भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक कवि हैं, अतः उनके काव्य में भारतीयता के स्वर उभरे हैं। यद्यपि उनकी जन्मभूमि के विषय में मतैक्य नहीं है। बंगाल, विदर्भ, विदिशा, उज्जयिनी, कश्मीर, गढ़वाल आदि को इतिहासकारों ने उनकी जन्मभूमि निरूपित करने का प्रयास किया है। वह किस क्षेत्र के, किस नगर के, किस प्रदेश के, किस जनपद के हैं, इस विषय में मतभेद हो सकता है किन्तु कालिदास भारत वसुन्धरा के संपूत हैं, यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है। गुणवान् व्यक्ति को प्रत्येक जन, प्रत्येक समाज, प्रत्येक नगर, प्रत्येक जनपद और प्रत्येक राज्य अपनाना चाहता है, अतः विद्वानों का अपने-अपने पक्ष में तर्क देकर कालिदास को अपने क्षेत्र का सिद्ध करना स्वाभाविक है। किन्तु कालिदास भारतमाता के अमर संपूत हैं, भारत की अतुल्य संस्कृति के उपासक हैं, भारतीय काव्य परम्परा के मणि हैं, भारतीयता के अग्रदूत हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। उनके व्यक्तित्व

को किसी जाति विशेष से, किसी नगर विशेष से, किसी क्षेत्र विशेष से या किसी राज्य विशेष से बाँधा नहीं जा सकता। वे भारत के लाल हैं, भारत की अमर कविता के स्रोत हैं और भारत के गुणों के अप्रतिम गायक हैं।

आप यह भी जानते हैं कि उन्होंने तीन नाटकों, दो खण्डकाव्यों तथा दो महाकाव्यों की रचना की जिनमें रघुवंश महाकाव्य, सूर्यवंश के गौरवशाली इतिहास का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। इसमें कुल 19 सर्ग हैं। यह कविता और दर्शन का सुन्दर समन्वय उपस्थापित करता है। वस्तु वर्णन की दृष्टि से रघुवंश महाकाव्य के तीन खण्ड किये जाते हैं — पहला रघुखण्ड — प्रथम से आठवें सर्ग तक है जिसमें दिलीप, रघु तथा अज का वर्णन किया गया है। दूसरा रामखण्ड कहलाता है। इसमें पन्द्रहवें सर्ग तक की कथा को समाहित किया जाता है। दशरथ और राम आदि इस खण्ड के प्रमुख राजा हैं। तीसरा खण्ड खिलखण्ड कहा जा सकता है। इसमें कवि अपने महाकाव्य को उपसंहार की ओर ले जाता है।

रघुवंश वीर रस प्रधान महाकाव्य है। कवि ने इस महाकाव्य में रघुवंश के उत्कर्ष और अपकर्ष का मनोहारी वर्णन किया है। आपके पाठ्यक्रम में इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक 25 श्लोक निर्धारित हैं। जिनमें प्रथम दस श्लोकों का अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे। इन दस श्लोकों में प्रथम श्लोक मंगलाचरण के रूप में है। जिसमें कवि ने अपने आराध्य शिव और पार्वती की वन्दना की है। दूसरे श्लोक में उन्होंने सूर्य से उत्पन्न रघुवंश के महत्त्व का संकेत करते हुये उसके वर्णन में अपनी असमर्थता का निरूपण किया है जो उनकी विनम्रता का द्योतक है। तीसरा श्लोक भी कवि की विनम्रता की ही प्रस्तुति है। चौथे में पूर्व कवियों के प्रति अधमर्णता व्यक्त की गयी है। पाँचवें से दसवें तक रघुवंशी राजाओं की विशेषताओं का वर्णन है। इस प्रकार आप इन दस श्लोकों में रघुवंश महाकाव्य की भूमिका का अध्ययन करेंगे जो आपके लिये शिक्षाप्रद तो होगा ही, आपके जीवन को उत्कर्ष भी प्रदान करेगा।

7.2 काव्यांश की व्याख्या

7.2.1 मंगलाचरण

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥1॥

प्रसंग— किसी भी ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये तथा पाठकों, अध्यापकों एवं व्याख्याकारों के कल्याण के लिये तथा शिष्यों की शिक्षा के लिये कवि अपने काव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में अपने इष्ट देवता की आराधना करते हैं। उक्त श्लोक में महाकवि कालिदास ने भगवान् शिव व पार्वती को प्रणाम किया है। यह ग्रन्थ का मंगलाचरण श्लोक है।

अन्वयः — (अहं) वागर्थौ इव सम्पृक्तौ जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ वागर्थप्रतिपत्तये वन्दे।

शब्दार्थ — अहं = मैं कालिदास, वागर्थौ इव = शब्द और अर्थ के समान, सम्पृक्तौ = नित्य सम्बद्ध, जगतः = संसार के, पितरौ = माता और पिता, पार्वतीपरमेश्वरौ = पार्वती और शिव को, वागर्थप्रतिपत्तये = शब्दार्थ के ज्ञान के लिए, वन्दे = प्रणाम करता हूँ।

अनुवाद — मैं कालिदास शब्द और अर्थ के सामान नित्य सम्बद्ध जगत् के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर शिव को शब्दार्थ के ज्ञान के लिए प्रणाम करता हूँ।

वागर्थाविव — वगर्थो + इव (अयादि सन्धि)

वागर्थप्रतिपत्तये — वाक् + अर्थप्रतिपत्तये (जश्च सन्धि)

समास —

पितरौ — माता च पिता च पितरौ (एकशेष द्वन्द्व समास)

पार्वतीपरमेश्वरौ — पार्वती च परमेश्वरश्च पार्वतीपरमेश्वरौ (द्वन्द्व समास)

वागर्थप्रतिपत्तये — वाक् च अर्थश्च वागर्थो तयोः प्रतिपत्तिः तस्यै। (द्वन्द्व समास)

छन्द— अनुष्टुप्

लक्षणम् — श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम्।

द्वि चतुष्पादयोः ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अनुष्टुप् या श्लोक के प्रत्येक पाद में 8 अक्षर होते हैं। इसमें षष्ठ अक्षर सदा गुरु होता है और पंचम अक्षर सदा लघु। द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु होता है और प्रथम तथा तृतीय चरण में गुरु होता है। अन्य अक्षर लघु या गुरु हो सकते हैं।

विशेष — साहित्य परम्परा में ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण करने की परम्परा है। मंगलाचरण तीन प्रकार के होते हैं — 1. नमस्कारात्मक, 2. वस्तुनिर्देशात्मक एवं 3. आशीर्वादात्मक। महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंशम् महाकाव्य के प्रारम्भ में नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया है। ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये उन्होंने जगत् के माता-पिता शिव एवं पार्वती को प्रणाम किया है। परम्परा में भगवान् शिव को ज्ञान का अधिष्ठाता माना जाता है। ज्ञान के लिये शिव की ही उपासना करने का विधान है — ‘ज्ञानमिच्छेत् महेश्वरात्’। मनीषियों के अनुसार शब्द की समग्र सम्पत्ति पार्वती के अधीन है। अशेष शब्दराशि को पार्वती ही धारण करती हैं तथा अर्थरूप समग्र जगत् को भगवान् शंकर धारण करते हैं। अतः शब्द और अर्थ की सम्यक् प्रतिपत्ति के लिये शिव और पार्वती की उपासना करनी चाहिये—

शब्दजातमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा।

अर्थरूपं यदखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः।।

इसलिये कालिदास ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में शब्दार्थ की प्रतिपत्ति के लिये शिव और पार्वती को नमस्कार किया है।

अलंकार — ‘वागर्थाविव सम्पृक्तौ जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ’ में उपमान वागर्थो से उपमेय पार्वतीपरमेश्वरौ का सम्पृक्तत्व रूप साधर्म्य वर्णित होने के कारण उपमा अलंकार है। इसका लक्षण — ‘साम्यमन्येन वर्णयस्य वाच्यं चेदेकदोपमा’ है।

7.2.2 सूर्यवंश का प्रभाव तथा कवि की विनम्रता —

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।

तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।2।।

प्रसंग — प्रस्तुत पद्य में महाकवि कालिदास ने विनम्रता व्यक्त करते हुये महान् सूर्यवंश के समक्ष अपनी बुद्धि को स्वल्पविषया बताकर उस वंश का वर्णन करने में अपने को असमर्थ बताया है।

अन्वयः — सूर्यप्रभवः वंशः क्व, अल्पविषया मतिः च क्व, मोहात् दुस्तरं सागरम् उडुपेन तितीर्षुः अस्मि ।

शब्दार्थ — सूर्यप्रभवः= सूर्य है कारण जिसका, वंश = कुल, क्व = कहाँ, अल्पविषया = अल्प विषय को जानने वाली, मति = बुद्धि, क्व = कहाँ, दुस्तरम् = पार करने में दुष्कर, सागरम् = सागर को, मोहात् = अज्ञानता से, उडुपेन = छोटी नाव से, तितीर्षुः = तैरने की इच्छा वाला, अस्मि = हूँ ।

अनुवाद — सूर्य से उत्पन्न होने वाला कुल कहाँ और अल्प विषय को जानने वाली मेरी बुद्धि कहाँ? फिर भी मैं अत्यन्त कठिन सागर को अज्ञानतावश छोटी नाव से पार करने का इच्छुक हूँ, अर्थात् जैसे छोटी नाव से अगाध सागर को पार करना अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार मेरी स्वल्प विषयों को समझने वाली बुद्धि से महान् सूर्य वंश का वर्णन कर पाना अत्यन्त दुष्कर है ।

सन्धि —

चाल्पविषया — च + अल्पविषया (दीर्घ सन्धि)
 तितीर्षुर्दुस्तरम् — तितीर्षुः + दुस्तरम् (विसर्ग सन्धि)
 उडुपेनास्मि — उडुपेन + अस्मि (दीर्घ सन्धि)

समास—

सूर्यप्रभवः — सूर्यः प्रभवो यस्य सः (बहुव्रीहि समास)
 अल्पविषया — अल्पो विषयो यस्याः सा (बहुव्रीहि समास)

विशेष — सूर्यवंशी राजाओं के परम पवित्र चरित्र का वर्णन करने के लिये महाकवि कालिदास रघुवंश महाकाव्य की रचना के लिये उद्यत हैं। यह वंश सूर्य से उत्पन्न परम तेजस्वी वंश है। इसमें महाराज मनु, दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम जैसे पराक्रमी और यशस्वी राजा हुये हैं जिनका यश तथा धर्म समग्र भूमंडल में व्याप्त है। ऐसे राजाओं के वर्णन के लिये जिस सामर्थ्यवती मनीषा की आवश्यकता होती है, वह मुझमें नहीं है। रघुवंश यश और कीर्ति की लहरों से लहराता हुआ महान् समुद्र की भाँति है और मेरी स्वल्प विषया मति छोटी नौका के समान है। जिस प्रकार छोटी नौका से महान् समुद्र को नहीं पार किया जा सकता उसी प्रकार स्वल्प विषया मति से रघुवंश का वर्णन भी असम्भव है। कवि ने रघुवंश के उत्कर्ष का कथन अपनी कृति की उत्कृष्टता के लिये किया है तथा अपनी बुद्धि को स्वल्प विषया कहकर अपनी विनम्रता द्योतित की है।

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।

प्रांशुलभ्ये फले लोभाद् उद्बाहुः वामनः ॥३॥

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में कालिदास ने सूर्यवंश का वर्णन सफलतापूर्वक न कर पाने के अनन्तर अपने को अपयश का पात्र बताने का उपक्रम किया है।

अन्वयः — मन्दः कवियशः प्रार्थी प्रांशुलभ्ये फले लोभात् उद्बाहुः वामन इव उपहास्यतां गमिष्यामि ।

शब्दार्थ — मन्दः = मूढ़, कवियशः प्रार्थी = कवि के यश को प्राप्त करने के इच्छुक, प्रांशुलभ्ये = उन्नत पुरुष द्वारा प्राप्त करने योग्य, फले = फल में, लोभात् = प्राप्ति के इच्छा से, उद्बाहुः = ऊपर उठाये हाथ वाले, वामनः = बौने पुरुष के, इव = समान, उपहास्यताम् = उपहास की पात्रता को, गमिष्यामि = प्राप्त करूँगा ।

अनुवाद — मैं मूर्ख हूँ और कवि के यश को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ। ऐसा मैं कालिदास उन्नत पुरुष के द्वारा प्राप्त करने योग्य फल की ओर लोभ से ऊपर हाथ उठाये हुए बौने व्यक्ति के समान उपहास का पात्र बनूँगा।

रघुवंशम् (प्रथम सर्ग) श्लोक
1-10

सन्धि —

- गमिष्याम्युपहास्यताम् — गमिष्यामि + उपहास्यताम् (यण् सन्धि)
लोभादुद्बाहुः — लोभात् + उद्बाहुः (जश्त्व सन्धि)
उद्बाहुरिव — उद्बाहुः + इव (विसर्ग सन्धि)

समास —

- कवियशःप्रार्थी — कवीनां यशः कवियशः तत् प्रार्थयते तच्छीलः (तत्पुरुष समास)
प्रांशुलभ्ये — प्रांशुना लभ्यः तस्मिन् (तत्पुरुष समास)

विशेष — प्रतिपाद्य वस्तु के महत्त्व और उसकी महिमा का प्रतिपादन कर कवि अपने प्रबन्ध के महत्त्व को द्योतित करते हैं। कालिदास का प्रतिपाद्य रघुवंश है। जिसके बारे में उन्होंने स्वयं बताया है कि यह वंश सूर्य से उत्पन्न है। सूर्य स्वयं समस्त भुवनों को प्रकाशित करते हैं, अतः उनके वंश का महान् होना स्वाभाविक है। एक तो सूर्य से उत्पन्न वंश, दूसरा मैं। उसके वर्णन को उद्यत स्वल्प बुद्धि वाला मन्द, मूर्ख होकर भी काव्यनिर्माण से प्राप्त होने वाले यश को पाने का इच्छुक हूँ। ऐसे में मेरी गति उस बौने के समान है जो उन्नत पुरुष द्वारा प्राप्त करने योग्य ऊँचे पेड़ में लगे फल को तोड़ने की इच्छा से हाथ ऊपर उठा रहा हो। ऐसे व्यक्ति की दशा को देखकर लोग उस पर हँसते हैं। मेरी भी वही गति होगी।

7.2.3 पूर्व कवियों की अधमर्णता

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥४॥

प्रसंग — महाकवि कालिदास ने प्रस्तुत श्लोक में पूर्व महाकवियों वाल्मीकि आदि के द्वारा अपने ग्रन्थों में किये गये सूर्यवंश के वर्णन के सहारे रघुवंश के वर्णन में अपनी सफलता की सम्भावना की है।

अन्वयः — अथवा पूर्वसूरिभिः कृतवाग्द्वारे अस्मिन् वंशे वज्रसमुत्कीर्णे मणौ सूत्रस्य इव मे गतिः अस्ति।

शब्दार्थ — अथवा = अथवा, पूर्वसूरिभिः = मेरे पूर्ववर्ती कवि वाल्मीकि, व्यास आदि के द्वारा, कृतवाग्द्वारे = रामायण आदि की रचना के माध्यम से, अस्मिन् = इस, वंशे = कुल में, वज्रसमुत्कीर्णे = वज्र द्वारा छिद्र किये गये, मणौ = मणि में, सूत्रस्य इव = सूत्र के समान, मे = मेरी, गतिः = स्थिति, अस्ति = है।

अनुवाद — वाल्मीकि आदि पूर्व कवियों ने सूर्यवंश पर रामायण आदिकाव्य लिखकर मेरे लिये वाणी का द्वार पहले ही खोल दिया है। अतः मेरे लिये सूर्यवंश में प्रविष्ट होना तथा उसका वर्णन करना उसी प्रकार सरल हो गया है, जिस प्रकार वज्र से छेदे गये मणि में सूत्र सरलता से प्रविष्ट हो जाता है।

वंशेऽस्मिन्	— वंशे + अस्मिन् (पूर्वरूप सन्धि)
सूत्रस्येव	— सूत्रस्य + इव (गुण सन्धि)
इवास्ति	— इव + अस्ति (दीर्घ सन्धि)

समास —

कृतवाग्द्वारे	— कृतं वाक् द्वारं यस्य सः कृतवाग्द्वारः तस्मिन् (बहुव्रीहि समास)
पूर्वसूरिभिः	— पूर्वं च ते सूरयः, पूर्वसूरयः, तैः पूर्वसूरिभिः (कर्मधारय समास)
वज्रसमुत्कीर्णं	— वज्रेण समुत्कीर्णः वज्रसमुत्कीर्णः, तस्मिन् (तत्पुरुष समास)

विशेष — कालिदास अति विनयशील और निरहंकार कवि हैं। पूर्व में उन्होंने अपनी बुद्धि को 'स्वल्पविषया' कहा था तथा अपने को मन्द भी कहा था जो उनकी विनयशीलता और विनम्रता का परिचायक है। अब जब रघुवंश का वर्णन करना उन्होंने प्रारम्भ कर ही दिया है तो इसकी पूर्णता भी निश्चित है। ऐसे में इस पूर्णता का श्रेय वह अपने पूर्व कवियों वाल्मीकि तथा व्यास आदि को देते हुये अपने को 'सूत्र' के समान बताते हैं। उनका कथन है कि रामायण की रचना करके वाल्मीकि ने तथा महाभारत में रामकथा का उल्लेख करके व्यास ने मेरे लिये रघुवंश में प्रवेश करने के लिये वाणी का द्वार बना दिया है। जिस प्रकार वज्र से छिद्र बना देने के बाद मणि जैसे कठोर पदार्थ में सूत्र जैसा कोमल तन्तु प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार वाल्मीकि आदि के द्वारा निर्मित वाग्द्वार से मणि में सूत्र की भाँति में प्रविष्ट हो जाऊँगा। इस प्रकार इस महाकाव्य की पूर्णता का समग्र श्रेय पूर्व कवियों को जाता है, मुझे नहीं।

7.2.4 रघुकुल के राजाओं की विशेषता

सोऽहमाजन्म शुद्धानामाफलोदय कर्मणाम्।
आसमुद्र क्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥5॥

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में कवि कालिदास ने रघुवंश के राजाओं की विशेषता का वर्णन किया है। ये राजा जन्म से शुद्ध, फलप्राप्तिपर्यन्त कार्य करने वाले, समुद्र पर्यन्त पृथिवी का शासन करने वाले थे। इनका रथ स्वर्ग तक जाता था।

अन्वयः — सः, अहम्, आजन्मशुद्धानाम् आफलोदयकर्मणाम्, आसमुद्रक्षितीशानाम्, आनाकरथवर्त्मनां ('रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये')।

शब्दार्थ — सः = वह पूर्वोक्त गुणों से युक्त, अहम् = मैं कालिदास, आजन्मशुद्धानाम् = जन्म से लेकर शुद्ध, आफलोदयकर्मणाम् = फलप्राप्ति पर्यन्त कार्य करने वाले, आसमुद्रक्षितीशानाम् = समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के स्वामी, आनाकरथवर्त्मनाम् = स्वर्ग पर्यन्त रथ को ले जाने वाले।

अनुवाद — पूर्वोक्त गुणों से युक्त मैं कालिदास जन्म से शुद्ध, फल की प्राप्ति पर्यन्त कार्य को करने वाले, सागर पर्यन्त पृथ्वी के स्वामी, स्वर्ग पर्यन्त रथ को ले जाने वाले रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा।

सन्धि—

सोऽहम्	— सः + अहम् (पूर्वरूप-विसर्ग सन्धि)
सूत्रस्येवास्ति	— सूत्रस्य + इव (गुण सन्धि)
इवास्ति	— इव + अस्ति (दीर्घ सन्धि)

आफलोदयकर्मणाम्	— आफलोदयः कर्म येषां ते तेषां (बहुव्रीहि समास)
आसमुद्रक्षितीशानाम्	— आसमुद्रं क्षितेः ईशः क्षितीशः तेषाम् (तत्पुरुष समास)
अनाकरथवर्त्मनाम्	— अनाकं रथवर्त्म येषां तेषाम् (बहुव्रीहि समास)

विशेष — कालिदास ने यहाँ पुनः अपने को 'सोऽहम्' कह कर अपने पूर्व गुणों का स्मरण कराया है तदनन्तर रघुवंशी राजाओं के वैशिष्ट्य का वर्णन प्रारम्भ किया है। 'सः' इस तत्पद से उन्होंने अपने अल्पविषयमत्तित्व आदि का स्मरण कराते हुये इस श्लोक में रघुवंशी राजाओं की चार विशेषताओं का उल्लेख किया है। 1. आजन्मशुद्धानाम् — जो जन्म से ही शुद्ध हैं, पवित्र हैं अर्थात् शास्त्रों द्वारा विहित जिनके राज्याभिषेक आदि समस्त संस्कार सम्पन्न किये गये हैं। 2. आफलोदयकर्मणाम् — जो फल (परिणाम) की सिद्धि पर्यन्त कर्मशील रहते हैं। प्रारम्भ किये गये कार्य को मध्य में नहीं छोड़ते। 3. आसमुद्रक्षितीशानाम्— समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के जो स्वामी हैं। इस पृथ्वी के वही चक्रवर्ती नरेश हैं। 4. अनाकरथवर्त्मनाम् — उनका रथ स्वर्ग तक जाता है। वे इन्द्र के सहचरी हैं। इस प्रकार के जो रघुवंशी दिलीप, अज आदि राजा हैं, मैं उनका वर्णन करूँगा।

यथाविधि हुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।

यथाऽपराधदण्डानां यथाकाल प्रबोधिनाम् ॥6॥

प्रसंग	— प्रस्तुत श्लोक में कवि कालिदास ने पूर्व श्लोक में वर्णित विशेषताओं के अतिरिक्त अन्य चार विशेषताओं का उल्लेख किया है।
अन्वयः	— यथाविधिहुताग्नीनां, यथाकामार्चितार्थिनाम्, यथापराधदण्डानां, यथाकालप्रबोधिनां "रघूणामन्वयं वक्ष्ये"।
शब्दार्थ	— यथाविधिहुताग्नीनाम् = विधि के अनुसार अग्नि में हवन करने वाले, यथाकामार्चितार्थिनाम् = याचकों की इच्छा के अनुसार दान देने वाले, यथाऽपराधदण्डानां = अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले, यथाकालप्रबोधिनाम् = उचित समय पर प्रबुद्ध होकर कार्य पूर्ण करने वाले।

अनुवाद — मैं शास्त्र के अनुसार यज्ञ करने वाले और याचकों की इच्छा के अनुसार दान देने वाले, अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले, उचित समय पर प्रबुद्ध होकर अपने कार्य को पूर्ण करने वाले, रघुवंश के राजाओं का वर्णन करूँगा।

सन्धि —

यथाकामार्चित	— यथाकाम + अर्चित (दीर्घ सन्धि)
यथापराध	— यथा + अपराध (दीर्घ सन्धि)

समास—

यथाविधिहुताग्नीनाम्	— विधिम् अनतिक्रम्य यथाविधि, यथाविधि हुता अग्नयः यैर्तेषाम् (अव्ययीभावगर्भबहुव्रीहि)
यथापराधदण्डानाम्	— अपराधम् अनतिक्रम्य यथापराध दण्डो येषाम् तेषाम् (अव्ययीभावगर्भबहुव्रीहि)

विशेष — महाराज रघु के वंश में उत्पन्न राजाओं की अन्य विशेषतायें ये हैं कि वे 'यथाविधिहुताग्नि' हैं। शास्त्रों में प्रतिपादित विधि के अनुसार वे यज्ञ आदि का सम्पादन करते हैं तथा आहुति देकर अग्नि को तृप्त करते हैं। शास्त्रीय विधि का अतिक्रमण वे नहीं करते। वे अपने द्वार पर आये याचकों को उनकी इच्छा के अनुसार, जितनी आवश्यकता है उतना दान देकर उन्हें तृप्त करते हैं। रघु ने कौत्स को स्वयं यथेच्छ दान दिया था, जिसका वर्णन कालिदास ने इसी ग्रन्थ में किया है। रघुवंशी राजा अपराधी को उसके अपराध के अनुसार दण्ड देते हैं। जैसा अपराध वैसा दण्ड। वे 'यथाकालप्रबोधी' हैं। यथासमय प्रबोधनशील हैं, समय के अनुसार ही अपने कार्यों को सम्पन्न करते हैं। समय को व्यर्थ नहीं जाने देते और किसी कार्य की पूर्णता में विलम्ब भी नहीं करते।

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।

यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥ १७ ॥

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में कालिदास ने रघुवंशी राजाओं के मितभाषिता आदि गुणों का सप्रयोजन उल्लेख किया है।

अन्वयः — त्यागाय सम्भृतार्थानां, सत्याय मितभाषिणां, यशसे विजिगीषूणां, प्रजायै गृहमेधिनाम्, "रघूणामन्वयं वक्ष्ये"।

शब्दार्थ — त्यागाय = सत्पात्र को दान के लिए, सम्भृतार्थानां = धन को इकट्ठा करने वाले, सत्याय = सत्य के लिए, मितभाषिणाम् = कम बोलने वाले, यशसे = यश के लिए, विजिगीषूणाम् = जीतने के इच्छा वाले, प्रजायै = प्रजा के लिए अर्थात् सन्तान के लिए, गृहमेधिनाम् = विवाह करने वाले।

अनुवाद — योग्य सत्पात्र को दान देने के लिए जो धन को संचित करते थे, सत्य बोलने के लिए जो कम बोलते थे और यश के लिए जीतने की इच्छा करते थे किसी अन्य के राज्य को छीनने के लिए नहीं। जो सन्तान प्राप्ति के लिए विवाह करते थे, भोग के लिए नहीं। मैं इस प्रकार के रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा।

समास—

सम्भृतार्थानाम् — सम्भृतः अर्थः यैः ते सम्भृतार्थाः तेषाम् सम्भृतार्थानाम् (बहुव्रीहि)

मितभाषिणाम् — मितं भाषन्ते तच्छीलाः इति मितभाषिणः तेषाम्।

विजिगीषूणाम् — विजेतुं इच्छन्ति इति विजिगीषन्ति, विजिगीषन्ति इति विजिगीषवः तेषां विजिगीषूणाम् (उपपदसमास)

गृहमेधिनाम् — गृहैः मेधितुम् शीलम् येषां ते गृहमेधिनः तेषां गृहमेधिनाम्

विशेष — रघुवंशी राजा धन का संचय करते थे किन्तु धन संचय का उनका लक्ष्य अपने वंश के उपभोग के लिये नहीं था। वे सत्पात्र को दान देने के लिये ही धन संचय करते थे। दुर्व्यापार हेतु धनार्जन में उनकी प्रवृत्ति नहीं होती थी। वे मितभाषी थे, कम बोलते थे किन्तु उनका मितभाषण किसी के पराभव के लिये न होकर सत्य के लिये था। अधिक बोलने वाला मिथ्याभाषी होता है। वे यश के लिये विजय प्राप्त करते थे, अर्थसंग्रह या किसी के राज्य में अधिकार करने के लिये नहीं। वे सन्तान प्राप्ति के लिये विवाह करते थे काम के लिये नहीं।

प्रसंग — प्रस्तुत पद्य में महाकवि कालिदास ने रघुवंशी राजाओं के शैशव, यौवन और वृद्धावस्था के कार्यों का उल्लेख करते हुये उनकी विशेषतायें बतायी हैं ।

अन्वयः — शैशवे, अभ्यस्तविद्यानां, यौवने, विषयैषिणां, वार्धके, मुनिवृत्तीनाम्, अन्ते, योगेन, तनुत्यजां, 'रघूणामन्वयं वक्ष्ये' ।

शब्दार्थ — शैशवे = बाल्यकाल में, अभ्यस्तविद्यानां = समस्त विद्याओं का अभ्यास करने वाले, यौवने = युवावस्था में, विषयैषिणाम् = गृहस्थ में रहकर विषयों का भोग करने वाले, वार्धके = वृद्धावस्था में, मुनिवृत्तीनां = ऋषियों के समान आचार व्यवहार करने वाले, अन्ते = मृत्युकाल में, योगेन = चित्तवृत्तियों के निरोध से अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम में परमात्मा को स्मरण करते हुए, तनुत्यजां = शरीर को छोड़ने वाले ।

अनुवाद— बाल्यकाल में विद्या का अभ्यास करने वाले, युवावस्था में गृहस्थाश्रम के विषयों का भोग करने वाले, वृद्धावस्था में ऋषियों के समान व्यवहार करने वाले, अर्थात् (अरण्य में रहकर परमात्मा को ध्यान करने वाले) मरण काल में भगवान् को स्मरण करते हुए शरीर को छोड़ने वाले रघुवंश का वर्णन मैं कालिदास करूँगा ।

सन्धि—

योगेनान्ते — योगेन+अन्ते (दीर्घ सन्धि)

समास—

अभ्यस्तविद्यानाम् — अभ्यस्ताः विद्या यैः ते अभ्यस्तविद्याः तेषाम् अभ्यस्तविद्यानाम् (बहुव्रीहि समास)

मुनिवृत्तीनाम् — मुनेः वृत्तिरिव वृत्तिः येषाम् ते मुनिवृत्तयः तेषाम् मुनिवृत्तीनाम् (बहुव्रीहि समास)

तनुत्यजाम् — तनुम् त्यजन्ति इति तनुत्यजः तेषाम् तनुत्यजाम् (उपपद समास)

विशेष — भारतीय संस्कृति में जीवन को चार आश्रमों में बांटा गया है — ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास । रघुवंश के राजा शैशव काल में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये विद्या का अभ्यास करते थे । यौवन काल में गृहस्थ आश्रम का पालन करते हुये विषय आदि का उपभोग करते थे तथा वृद्धावस्था में वानप्रस्थ धारण कर मुनियों के समान आचरण करते हुये अन्ततः संन्यास आश्रम में चित्तवृत्तियों का निरोध करके तथा परमात्मा का ध्यान करते हुये शरीर का त्याग करते थे । इस प्रकार उनका समग्र जीवन नियम और संयम से परिपूर्ण था ।

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।

तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ॥९॥

प्रसंग — कालिदास ऊपर चार श्लोकों में रघुवंश में उत्पन्न राजाओं की विशेषताओं का उल्लेख करने के अनन्तर उनका वर्णन करने की प्रतिज्ञा करते हैं ।

अन्वयः — सः, अहम् तनुवाग्विभवोऽपि, सन्, तद्गुणैः, कर्णमागत्य, चापलाय, प्रचोदितः, सन्, 'रघूणामन्वयं वक्ष्ये' ।

शब्दार्थ— तनुवाग्विभवोऽपि = वाणी के सामर्थ्य से रहित, सन् = होने पर भी, तद्गुणैः = रघुवंशी राजाओं के गुणों के द्वारा, कर्णमागत्य = कान में आकर, चापलाय = चपलता के लिए अर्थात् बिना विचार किये कार्य करने के लिए, प्रचोदितः = प्रेरित किया, रघूणाम् = रघुवंशियों के, अन्वयम् = वंश को, वक्ष्ये = कहूँगा।

अनुवाद— यद्यपि मेरी वाणी में सामर्थ्य कम है फिर भी मैं पूर्व में कहे गये गुणों से युक्त रघुवंशी राजाओं का वर्णन करने को उद्यत हूँ, क्योंकि उनके गुणों ने मेरे कानों में आकर मुझे चपलता करने के लिये प्रेरित कर दिया है।

सन्धि —

तद्गुणैः — तत् + गुणैः (जश्त्व सन्धि)

समास—

तनुवाग्विभवः — वाचां विभवः वाग्विभवः तनुः वाग्विभवः यस्य सः तनुवाग्विभवः। (बहुव्रीहि समास)

तद्गुणैः — तेषां गुणाः तद्गुणाः तैः तद्गुणैः। (तत्पुरुष समास)

विशेष — कालिदास ने पाँचवें श्लोक से आठवें श्लोक तक कुल चार श्लोकों में, रघुवंशी राजाओं के सोलह गुणों का वर्णन किया है। जो निम्नलिखित हैं —

1. जन्म से ही पवित्रता, 2. फलप्राप्तिपर्यन्त उद्यमशीलता, 3. समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का स्वामित्व, 4. स्वर्गपर्यन्त रथगामित्व, 5. शास्त्रोक्तविधि से यज्ञ सम्पादन, 6. याचकों को आवश्यकतानुसार दान देना, 7. अपराध के अनुसार दण्डविधान, 8. समयानुसार कार्य सम्पादन, 9. त्याग के लिये धन संचय, 10. सत्य के लिये मितभाषिता, 11. यश के लिये विजयेच्छा, 12. सन्तति के लिये गृहमेधिता, 13. शैशव काल में विद्या का अभ्यास, 14. यौवन में विषय का उपभोग, 15. वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति का धारण तथा 16. संन्यास आश्रम योगबल से देह का त्याग।

कालिदास का कथन है कि यद्यपि मेरी वाणी में उतना सामर्थ्य नहीं है तथापि इन राजाओं के गुण श्रवण ने मुझे इनका गुणगान करने के लिये रघुवंश महाकाव्य की रचनारूप चपलता करने के लिये प्रेरित किया है। कवि ने अपने राजाओं के इन गुणों का निर्देश करके अपनी कृति की उत्कृष्टता का संकेत किया है।

6.2.5 विद्वानों से रघुवंशी राजाओं के चरित्र को सुनने का आग्रह

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्ति हेतवः।

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा॥१०॥

प्रसंग — महाकवि कालिदास ने इस श्लोक में विद्वानों से रघुवंशी राजाओं के चरित्र को सुनने का आग्रह किया है तथा यह कहा है कि सोने की परीक्षा अग्नि में ही हुआ करती है।

अन्वयः — सदसद्व्यक्तिहेतवः सन्तः तं श्रोतुम् अर्हन्ति, हि हेम्नः विशुद्धिः श्यामिका अपि वा अग्नौ संलक्ष्यते।

शब्दार्थ— सदसद्व्यक्तिहेतवः = सत्य और असत्य को जानने वाले, सन्तः = विद्वान्, तं = उस रघुवंश को, श्रोतुम् = सुनने के लिए, अर्हन्ति = योग्य है, हि = क्योंकि, हेम्नः = सोने की, विशुद्धिः = शुद्धता, श्यामिका = दोषयुक्तता, अपि = भी, अग्नौ = अग्नि में ही, संलक्ष्यते = प्रतीत होती है।

अनुवाद— उचित और अनुचित को जानने वाले विद्वान् ही इस रघुवंश महाकाव्य को सुनने के योग्य हैं, क्योंकि स्वर्ण की शुद्धता अथवा दोष युक्तता का परीक्षण अग्नि में डालने से ही होता है।

रघुवंशम् (प्रथम सर्ग) श्लोक
1-10

सन्धि—

ह्यग्नौ — हि + अग्नौ (यण् सन्धि)

समास—

सदसद्वयव्यक्तिहेतवः — सत् च असत् सदसती सदसतोः व्यक्तिः सदसद्वयव्यक्तिः
सदसद्वयव्यक्तिः हेतवः सदसद्वयव्यक्तिहेतवः (तत्पुरुष समास)

विशेष — उपर्युक्त श्लोक के माध्यम से महाकवि कालिदास ने विद्वानों को अपने काव्य के श्रवण के लिये आमन्त्रित किया है। उनको अग्नि तथा अपनी कृति को स्वर्ण माना है। स्वर्ण का परीक्षण अग्नि में ही हो सकता है।

बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित प्रश्नों में सही उत्तर का चयन कीजिये—

(i) रघुवंशम् का मंगलाचरण है—

(क) नमस्कारात्मक

(ख) वस्तुनिर्देशात्मक

(ग) आशीर्वादात्मक

(घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) रघुवंश महाकाव्य का अंगीरस है—

(क) शृंगार

(ख) वीर

(ग) हास्य

(घ) करुण

(iii) रघु ने दान दिया—

(क) परशुराम

(ख) याज्ञवल्क्य

(ग) कौत्स

(घ) विश्वामित्र

2) वस्तु वर्णन की दृष्टि से रघुवंश महाकाव्य के कितने खण्ड हैं ?

.....
.....

3) रघुवंशी राजाओं के पाँच गुण लिखिये।

.....
.....

अभ्यास प्रश्न

1. कालिदास के मंगलाचरण का भावार्थ लिखिये।
2. कालिदास ने अपनी विनम्रता किन शब्दों में व्यक्त की है ?
3. 'प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः' इस सूक्ति का भावार्थ लिखिये।
4. रघुवंश के राजाओं के गुणों पर निबन्ध लिखिये।

7.3 सारांश

आपने इस इकाई में रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भिक दस श्लोकों का अध्ययन किया और यह जाना कि किसी भी कार्य के आरम्भ में प्रथमतः मंगलाचरण की परम्परा का निर्वाह करना चाहिये। कालिदास इस परम्परा का निर्वाह करते हुये शब्द और अर्थ के सामान नित्य सम्बद्ध जगत् के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर शिव को प्रणाम करते हैं। अपनी विनम्रता को द्योतित करते हुये वे कहते हैं कि सूर्य से उत्पन्न होने वाला कुल कहाँ और अल्प विषय को जानने वाली मेरी बुद्धि कहाँ? फिर भी मैं अत्यन्त कठिन सागर को अज्ञानतावश छोटी नाव से पार करने का इच्छुक हूँ, अर्थात् जैसे छोटी नाव से अगाध सागर को पार करना अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार मेरी स्वल्प विषयों को समझने वाली बुद्धि से महान् सूर्य वंश का वर्णन कर पाना अत्यन्त दुष्कर है। कालिदास महान् काव्य प्रतिभा के कवि हैं, तथापि अपने वर्ण्यविषय की महत्ता को संकेतित करते हुये वे कहते हैं कि मैं मूर्ख हूँ और कवि के यश को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ। अतः मैं कालिदास उन्नत पुरुष के द्वारा प्राप्त करने योग्य फल की ओर लोभ से ऊपर हाथ उठाये हुए बौने व्यक्ति के समान उपहास का पात्र बनूँगा।

कालिदास अपने कृतित्व का श्रेय स्वयं न लेते हुये उसे अपने पूर्ववर्ती वाल्मीकि आदि कवियों को देते हैं और कहते हैं कि सूर्यवंश पर रामायण आदिकाव्य लिखकर वाल्मीकि आदि कवियों ने मेरे लिये वाणी का द्वार पहले ही खोल दिया है। अतः मेरे लिये सूर्यवंश में प्रविष्ट होना तथा उसका वर्णन करना उसी प्रकार सरल हो गया है, जिस प्रकार वज्र से छेदे गये मणि में सूत्र सरलता से प्रविष्ट हो जाता है। कालिदास पुनः अपनी विनम्रता के कारण अपनी असमर्थता को दुहराते हुये रघुवंश के वर्णन में पुनः अपनी असमर्थता का स्मरण कराते हैं और कहते हैं कि मैं कालिदास जन्म से शुद्ध, फल की प्राप्ति पर्यन्त कार्य को करने वाले, सागरपर्यन्त पृथ्वी के स्वामी, स्वर्गपर्यन्त रथ को ले जाने वाले रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा। मैं शास्त्र के अनुसार यज्ञ करने वाले और याचकों की इच्छा के अनुसार दान देने वाले, अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले, उचित समय पर प्रबुद्ध होकर अपने कार्य को पूर्ण करने वाले, रघुवंश के राजाओं का वर्णन करूँगा। योग्य सत्पात्र को दान देने के लिए जो धन को संचित करते थे, सत्य बोलने के लिए जो कम बोलते थे और यश के लिए जीतने की इच्छा करते थे, किसी अन्य के राज्य को छीनने के लिए नहीं। जो सन्तान प्राप्ति के लिए विवाह करते थे, भोग के लिए नहीं। मैं इस प्रकार के रघुवंशी राजाओं का वर्णन करूँगा। वे पुनः कहते हैं कि मैं बाल्यकाल में विद्या का अभ्यास करने वाले युवावस्था में गृहस्थाश्रम के विषयों का भोग करने वाले, वृद्धावस्था में ऋषियों के समान व्यवहार करने वाले, अर्थात् अरण्य में रहकर परमात्मा का ध्यान करने वाले तथा मरण काल में भगवान् का स्मरण करते हुए शरीर को छोड़ने वाले रघुवंश के राजाओं का वर्णन करूँगा।

उनका कथन है कि यद्यपि मेरी वाणी में सामर्थ्य कम है फिर भी मैं पूर्व में कहे गये गुणों से युक्त रघुवंशी राजाओं का वर्णन करने को उद्यत हूँ, क्योंकि उनके गुणों ने मेरे कानों में आकर मुझे चपलता करने के लिये प्रेरित कर दिया है।

कालिदास कहते हैं कि उचित और अनुचित को जानने वाले विद्वान् ही इस रघुवंश महाकाव्य को सुनने के योग्य हैं, क्योंकि स्वर्ण की शुद्धता अथवा दोष युक्तता का परीक्षण अग्नि में डालने से ही होता है। अतः विद्वानों को चाहिये कि मेरे काव्य का श्रवण करें तथा उसके गुण दोष का परीक्षण करके मुझे और मेरी कृति को कृतार्थ करें।

सम्पृक्तौ	=	नित्य सम्बद्ध
वागर्थप्रतिपत्तये	=	शब्दार्थ के ज्ञान के लिए
उडुपेन	=	छोटी नाव से
तितीर्षुः	=	तैरने की इच्छा वाला
उपहास्यताम्	=	उपहास की पात्रता को
कवियशःप्रार्थी	=	कवि के यश को प्राप्त करने के इच्छुक
प्रांशुलभ्ये	=	उन्नत पुरुष द्वारा प्राप्त करने योग्य
पूर्वसूरिभिः	=	मेरे पूर्ववर्ती कवि वाल्मीकि
वज्रसमुत्कीर्णे	=	वज्र द्वारा छिद्र किये गये
आसमुद्रक्षितीशानाम्	=	समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के स्वामी
यथाविधिहुताग्नीनाम्	=	विधि के अनुसार अग्नि में हवन करने वाले
मितभाषिणाम्	=	कम बोलने वाले
गृहमेधिनाम्	=	विवाह करने वाले
विजिगीषूणाम्	=	जीतने के इच्छा वाले
वार्धके	=	वृद्धावस्था में
तनुत्यजां	=	शरीर को छोड़ने वाले
तनुवाग्विभवोऽपि	=	वाणी के सामर्थ्य से रहित
प्रचोदितः	=	प्रेरित किया
हेम्नः	=	सोने की
अर्हन्ति	=	योग्य है
संलक्ष्यते	=	प्रतीत होती है

7.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- 1) रघुवंशमहाकाव्यम्, डॉ. कृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011 ।
- 2) रघुवंशम्, प्रो. हरि दामोदर वेलणकर, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्, नवदेहली, 2011 ।
- 3) कालिदास ग्रन्थावली, ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2012 ।
- 4) संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, कस्तूरबा नगर, सिगरा, वाराणसी, 2001 ।
- 5) वृत्तरत्नाकरः, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011 ।
- 6) अमरकोश, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, बंगलो रोड़, दिल्ली, 2011 ।
- 7) संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009 ।

- 8) संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास, (चतुर्थ खण्ड), प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1967।
- 9) संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास (1-4 खण्ड), प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, नई दिल्ली, 2018।

7.6 बोध/अभ्यास प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न—

- 1) (i) (क) नमस्कारात्मक (ii) (ख) वीर (iii) (ग) कौत्स
- 2) वस्तु वर्णन की दृष्टि से रघुवंश महाकाव्य के तीन खण्ड हैं— (i) रघुखण्ड (ii) रामखण्ड (iii) खिलखण्ड।
- 3) रघुवंशी राजाओं के पाँच गुण इस प्रकार हैं—
 - i) जन्म से ही पवित्रता
 - ii) फलप्राप्तिपर्यन्त उद्यमशीलता
 - iii) समुद्रपर्यन्त पृथिवी का स्वामित्व
 - iv) त्याग के लिये धन संचय
 - v) सत्य के लिये मितभाषिता

अभ्यास प्रश्न—

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 8 रघुवंशम् (प्रथम सर्ग) श्लोक 11-25

इकाई की रूपरेखा

- 8.0 उद्देश्य
- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 काव्यांश की व्याख्या
 - 8.2.1 मनु का परिचय
 - 8.2.2 दिलीप का जन्म
 - 8.2.3 दिलीप का स्वरूप
 - 8.2.4 दिलीप के गुण
 - 8.2.5 दिलीप की कर-व्यवस्था
 - 8.2.6 दिलीप का सैन्य बल
 - 8.2.7 दिलीप के गुण
- 8.3 सारांश
- 8.4 शब्दावली
- 8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 8.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- रघुवंश के आदि राजा मनु का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- राजा दिलीप के प्रभाव को जान सकेंगे।
- कालिदास के वर्णन वैशिष्ट्य से परिचित हो सकेंगे।
- प्राचीन राजाओं के गुणों से परिचित हो सकेंगे।
- अनेक सन्धियों और समासों को जान सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपने रघुवंश महाकाव्य के प्रारम्भिक दस श्लोकों का अध्ययन किया और यह जाना कि किसी भी कार्य के आरम्भ में प्रथमतः मंगलाचरण की परम्परा का निर्वाह करना चाहिये। हमें अपने ज्ञान और बल पर कभी अहंकार नहीं करना चाहिये। कालिदास ने काव्य रचना का महान् सामर्थ्य होने के बाद भी अपनी विनम्रता को द्योतित किया है। कालिदास महान् काव्य-प्रतिभा के कवि हैं, तथापि अपने वर्ण्यविषय की महत्ता को संकेतित करते हुये वे कहते हैं कि मैं मूर्ख हूँ और कवि के यश को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ। अतः मैं उन्नत पुरुष के द्वारा प्राप्त करने योग्य फल की ओर लोभ से ऊपर हाथ उठाये हुए बौने व्यक्ति के समान उपहास का पात्र बनूँगा।

कालिदास अपने कृतित्व का श्रेय स्वयं न लेते हुये उसे अपने पूर्ववर्ती वाल्मीकि आदि कवियों को देते हैं और कहते हैं कि सूर्यवंश पर रामायण आदिकाव्य लिखकर वाल्मीकि आदि

कवियों ने मेरे लिये वाणी का द्वार पहले ही खोल दिया है। अतः मेरे लिये सूर्यवंश में प्रविष्ट होना तथा उसका वर्णन करना उसी प्रकार सरल हो गया है, जिस प्रकार वज्र से छेदे गये मणि में सूत्र सरलता से प्रविष्ट हो जाता है।

इस इकाई में आप रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग के 11 से 25 श्लोक तक का अध्ययन करेंगे। इन पन्द्रह श्लोकों में कालिदास ने वैवस्वत मनु तथा महाराज दिलीप का वर्णन किया है। दिलीप महान् तेजस्वी और प्रजावत्सल राजा थे। उन्होंने गुरु वसिष्ठ के आश्रम में रहकर कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा की थी तथा उसकी रक्षा के लिये सिंह के सम्मुख अपने को मांस के टुकड़े के समान समर्पित कर दिया था। कालिदास ने उनके वक्षस्थल की विशालता, उन्नत गात्रता तथा विशाल भुजाओं का वर्णन करते हुये उन्हें साक्षात् पराक्रम की संज्ञा दी है। दिलीप महान् शक्तिशाली थे। अपने आकार के समान उनकी प्रज्ञा थी। प्रज्ञा के अनुसार उनका आगम था। आगम के समान ही वे कार्यारम्भ करते थे तथा आरम्भ के समान ही फल प्राप्ति होती थी। वह एक साथ भयंकर और कान्त दोनों थे। कालिदास राजा में दोनों प्रकार के गुणों के पक्षधर हैं। शत्रुओं से सामना होने पर उन्हें भयंकर होना पड़ता है तथा प्रजा के प्रति उन्हें वात्सल्य की भावना भी रखनी होती है। रघुवंशी राजाओं की कर-व्यवस्था का उल्लेख करते हुये कालिदास ने कहा है कि वे राजा प्रजा के कल्याण के लिये ही उनसे कर लेते थे। जिस प्रकार सूर्य समुद्रादि से जल लेकर उसे हजार गुना करके बरसाता है। उसी प्रकार राजा दिलीप अपनी प्रजा से कर लेकर उसे सहस्र गुणित करके प्रजा के कल्याण में व्यय करते थे। कालिदास युद्ध के विरोधी थे। अतः अपने राजनायकों को उन्होंने शास्त्रों से ही कार्य करने वाला बताया है। उनके धनुष का प्रभाव मात्र ही उनकी विजय का कारण बनता था। राजा दिलीप के अनेक राजोचित गुणों का वर्णन भी आप यहाँ पढ़ेंगे।

इस प्रकार इस इकाई में आप कालिदास के द्वारा वर्णित राजा दिलीप के कुछ गुणों का अध्ययन कर सकेंगे। जिससे आप उन राजगुणों की सार्वकालिकता तथा सार्वभौमिकता का भी आकलन कर सकेंगे।

8.2 काव्यांश की व्याख्या

8.2.1 मनु का परिचय

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।

आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्द सामिव॥११॥

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने महाराज मनु का परिचय देते हुये उन्हें राजाओं में प्रथम तथा वेदों में ओंकार की तरह बताया है।

अन्वयः — मनीषिणां माननीयः वैवस्वतः नाम मनुः छन्दसां प्रणवः इव महीक्षिताम् आद्यः आसीत्।

शब्दार्थ — मनीषिणाम् = विद्वानों के, माननीयः = पूज्य, छन्दसाम् = वेदों के, प्रणवः इव = ओंकार के समान, महीक्षिताम् = पृथ्वी के राजाओं में, आद्यः = सर्वप्रथम, वैवस्वतः नाम = वैवस्वत नाम के सूर्य के पुत्र, मनुः = प्रथम मनु, आसीत् = थे।

अनुवाद — जिस प्रकार वेदों में सर्वप्रथम ओंकार होता है। उसी प्रकार राजाओं में सर्वप्रथम विद्वानों के पूजनीय सूर्य के पुत्र वैवस्वत नाम के मनु हुए।

आसीन्महीक्षिताम् — आसीत् + महीक्षिताम् (अनुनासिक सन्धि)

प्रणवश्छन्दसामिव — प्रणवः + छन्दसामिव (श्चुत्व सन्धि)

समास —

मनीषिणाम् — मनसः इषिणः मनीषिणः तेषाम् मनीषिणाम् (तत्पुरुष समास)

महीक्षिताम् — महीं क्षियन्ति इति महीक्षितः तेषाम् महीक्षिताम् (उपपद समास)

विशेष — महाकवि कालिदास दस श्लोकों में रघुवंश के राजाओं का गुणानुवर्णन करने के अनन्तर इस श्लोक से उनकी वंश परम्परा का वर्णन प्रारम्भ करते हैं। महाराज मनु साक्षात् सूर्य के पुत्र थे। सूर्य का एक नाम विवस्वान् है। विवस्वान् का पुत्र होने के कारण मनु को वैवस्वत कहा गया। इनकी चर्चा अनेक पुराणों में भी हुई है। कालिदास ने उन्हें ओंकार के समान आदरणीय और सर्वव्यापक बताया है।

8.2.2 दिलीप का जन्म

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।

दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव॥12॥

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में कालिदास ने महाराज मनु के पुत्र दिलीप के जन्म का वर्णन किया है।

अन्वयः — शुद्धिमति तदन्वये शुद्धिमत्तरः दिलीप इति राजेन्दुः क्षीरनिधौ इन्दुः इव प्रसूतः।

शब्दार्थ — शुद्धिमति = शुद्धता से युक्त, तदन्वये = उस मनु के वंश में, शुद्धिमत्तरः = अत्यन्त शुद्ध चरित्र वाले, दिलीप इति = दिलीप नामक, राजेन्दुः = राजाओं में श्रेष्ठ, क्षीरनिधौ = क्षीरसागर में, इन्दुः इव = चन्द्रमा के समान, प्रसूतः = उत्पन्न हुआ।

अनुवाद — सूर्य के पुत्र उस मनु के अत्यन्त शुद्ध वंश में क्षीरसागर में चन्द्रमा के समान राजाओं में श्रेष्ठ परम पवित्र दिलीप नामक राजा हुआ।

सन्धि —

राजेन्दुरिन्दुः — राजेन्दुः + इन्दुः (विसर्ग सन्धि)

क्षीरनिधाविव — क्षीरनिधौ + इव (अयादि सन्धि)

समास —

तदन्वये — तस्य अन्वयः तदन्वयः, तस्मिन् तदन्वये (तत्पुरुष समास)

राजेन्दुः — राजा इन्दुः इव राजेन्दुः (मयूरव्यंसकादि समास)

क्षीरनिधौ — क्षीरस्य निधिः क्षीरनिधिः, तस्मिन् (तत्पुरुष समास)

विशेष — रघुवंश महाकाव्य में चर्चित राजाओं में महाराज दिलीप का स्थान सर्वोच्च है। उन्होंने प्रजा के पालन तथा धर्म की रक्षा के लिये सदैव कार्य किया। उनकी पत्नी का नाम सुदक्षिणा था तथा उनके रघु नामक अत्यन्त प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसके नाम पर इस महाकाव्य का नाम रघुवंश रखा गया है।

व्यूढोरस्कः वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः ।

आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः ॥13॥

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने मनु के वंश में जन्मे राजा दिलीप के स्वरूप का वर्णन किया है।

अन्वयः — व्यूढोरस्कः वृषस्कन्धः शालप्रांशुः महाभुजः (सः) आत्मकर्मक्षमं देहम् आश्रितः क्षात्रः धर्म इव (स्थितः)।

शब्दार्थ — व्यूढोरस्कः = विशाल वक्षस्थल वाले, वृषस्कन्धः = वृषभ के स्कन्ध के समान स्कन्ध वाले, शालप्रांशुः = शाल वृक्ष के समान उन्नत, महाभुजः = बड़ी भुजाओं वाले, आत्मकर्मक्षमम् = अपने कार्यों को करने में समर्थ, देहम् = शरीर को, आश्रितः = धारण किये हुए, क्षात्रः = क्षत्रियसम्बन्धी, धर्मः = पराक्रम के, इव = समान।

अनुवाद — महाराज दिलीप का वक्षस्थल अत्यधिक चौड़ा था। उनके स्कन्ध वृषभ के स्कन्ध के समान ऊँचे और मजबूत थे। वे शालवृक्ष के समान उन्नत थे तथा उनकी भुजायें अत्यन्त दीर्घ थीं। वे अपने कार्यों के सम्पादन में समर्थ शरीर को धारण करते थे। जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो राजा दिलीप मूर्तिमान् क्षत्रिय धर्म हैं।

सन्धि —

इवाश्रितः — इव + आश्रितः (दीर्घ सन्धि)

समास —

व्यूढोरस्कः — व्यूढम् उरः यस्य सः व्यूढोरस्कः (बहुव्रीहि समास)

वृषस्कन्धः — वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धः यस्य सः वृषस्कन्धः (बहुव्रीहि समास)

शालप्रांशुः — शाल इव प्रांशुः शालप्रांशुः (कर्मधारय समास)

महाभुजः — महान्तौ भुजौ यस्य सः (बहुव्रीहि समास)

आत्मकर्मक्षमम् — आत्मनः कर्म इति आत्मकर्म, आत्मकर्मणि क्षमम्, आत्मकर्मक्षमम् (तत्पुरुष समास)

विशेष — शास्त्रों में किसी भी महापुरुष के स्कन्ध का वर्णन वृषभ के स्कन्ध की उपमा देकर किया जाता है। वृषभ अपने स्कन्ध पर समस्त भार को धारण कर लेता है। राजा दिलीप का स्कन्ध वृषभ के स्कन्ध के समान है। अतः वह समस्त प्रजा के भार को धारण करने में समर्थ हैं। इसी प्रकार उनकी ऊँचाई की तुलना शाल वृक्ष से की गई है। भुजाओं को जानुपर्यन्त लम्बमान् निरूपित किया गया है। यह शास्त्रीय स्वरूप उनकी वीरता तथा प्रजाजनों को धारण करने की क्षमता को द्योतित करता है।

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना ।

स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वी क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना ॥14॥

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में कालिदास ने राजा दिलीप की सर्वव्यापकता का वर्णन किया है।

अन्वयः — सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना सर्वोन्नतेन आत्मना मेरुः इव उर्वी क्रान्त्वा स्थितः।

शब्दार्थ — सर्वातिरिक्तसारेण = सभी प्राणियों से अधिक बल वाले, सर्वतेजोभिभाविना = सभी लोगों को अपने तेज से तिरस्कृत करने वाले, सर्वोन्नतेन = सबसे ऊँचे, आत्मना = अपने शरीर से, मेरुः इव = सुमेरु पर्वत के समान, ऊर्वीम् = पृथ्वी को, क्रान्त्वा = व्याप्तकर, स्थितः = विद्यमान है।

अनुवाद — जिस प्रकार सुमेरु पर्वत ने अपनी दृढ़ता, कान्ति तथा ऊँचाई से संसार के सभी दृढ़, कान्तियुक्त तथा ऊँचे पदार्थों को तिरस्कृत करके अपने विस्तार से सम्पूर्ण पृथ्वी को व्याप्त कर लिया है। उसी प्रकार राजा दिलीप ने अपने पराक्रम, तेज और विशाल व्यापक शरीर से सबको तिरस्कृत करते हुये समस्त पृथ्वी मण्डल को अपने अधीन कर लिया था।

सन्धि —

- सर्वोन्नतेनोर्वीम् — सर्वोन्नतेन + ऊर्वीम् (गुण सन्धि)
मेरुरिव — मेरुः + इव (विसर्ग सन्धि)
इवात्मना — इव + आत्मना (दीर्घ सन्धि)

समास —

- सर्वातिरिक्तसारेण — सर्वेभ्यः अतिरिक्तः सारः यस्य सः सर्वातिरिक्तसारः तेन
सर्वातिरिक्तसारेण, (बहुव्रीहि समास)
सर्वतेजोभिभाविना — सर्वान् तेजसा अभिभवतीति इति सर्वतेजोऽभिभावी, तेन
सर्वतेजोऽभिभाविना (तत्पुरुष समास)
सर्वोन्नतेन — सर्वेभ्यः उन्नतः सर्वोन्नतः तेन सर्वोन्नतेन (तत्पुरुष समास)

विशेष — यहाँ राजा दिलीप के पराक्रम और प्रभाव को सुमेरु पर्वत के समान बताया गया है। सुमेरु पर्वत अपने गुणों के कारण समस्त पदार्थों को तिरस्कृत करके समग्र पृथ्वी में अपने एकाधिपत्य को स्थापित किये हुये है। उसी प्रकार राजा दिलीप ने अपने गुणों के कारण अन्य समस्त राजाओं को तिरस्कृत करके समग्र पृथ्वी में अपना एकाधिपत्य या चक्रवर्तित्व स्थापित किया।

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।

आगमैः सदृशारम्भः आरम्भसदृशोदयः।।15।।

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने महाराज दिलीप के आकार आदि का वर्णन किया है।

अन्वयः — (स दिलीपः) आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः आगमैः सदृशारम्भः आरम्भसदृशोदयः (आसीत्)।

शब्दार्थ — आकारसदृशप्रज्ञः = आकृति के अनुरूप बुद्धि वाले, प्रज्ञया = बुद्धि के समान, सदृशागम = शास्त्र को अभ्यास करने वाले, आगमैः = शास्त्रों के अनुसार से, सदृशारम्भः = आरम्भ करने वाले, आरम्भसदृशोदयः = आरम्भ के अनुसार फल को प्राप्त करने वाले।

अनुवाद — महाराज दिलीप जिस प्रकार विशालकाय और सुन्दर आकार वाले थे वैसी ही आकार के समान उनकी बुद्धि थी। जैसी तीक्ष्ण उनकी बुद्धि थी वैसे ही वे शास्त्राभ्यास करने वाले थे। वे जैसा शास्त्राभ्यास करते थे या शास्त्रों से सीखते थे वैसे ही शास्त्रानुकूल कार्य

सन्धि —

सदृशागमः — सदृश + आगमः (दीर्घ सन्धि)

सदृशारम्भः — सदृश + आरम्भः (दीर्घ सन्धि)

सदृशोदयः — सदृश + उदयः (गुण सन्धि)

समास —

आकारसदृशप्रज्ञः — आकारेण सदृशी प्रज्ञा यस्य सः आकारसदृशप्रज्ञः (बहुव्रीहि समास)

सदृशागमः — सदृशः आगमः यस्य सः, सदृशागमः (बहुव्रीहि समास)

आरम्भसदृशोदयः — आरभ्यते इति आरम्भः, आरम्भेण सदृशः उदयः यस्य सः आरम्भसदृशोदयः (बहुव्रीहि समास)

विशेष — कालिदास ने इस पद्य में राजा दिलीप के आकार, बुद्धि, शास्त्राभ्यास, आरम्भ तथा फल प्राप्ति में एकरूपता दिखाई है।

8.2.4 दिलीप के गुण

भीमकान्तै नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।

अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः॥16॥

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में कालिदास ने महाराज दिलीप के भयंकर और कोमल गुणों का समन्वय स्थापित किया है।

अन्वयः — भीमकान्तैः नृपगुणैः च स उपजीविनां यादोरत्नैः अर्णव इव अधृष्यः अभिगम्यः च बभूव।

शब्दार्थ — भीमकान्तैः = भयंकर और सुन्दर, नृपगुणैः = राजाओं के लिये अपेक्षित गुणों से, सः = वह राजा दिलीप, उपजीविनाम् = आश्रित लोगों के लिये, यादोरत्नैः = जलजन्तु और रत्नों से, अर्णवः इव = समुद्र के समान, अधृष्यः = अभिभव के अयोग्य, अभिगम्यश्च = आश्रयदाता, बभूव = हुए।

अनुवाद — राजा दिलीप तेज और प्रताप आदि भयंकर तथा दया-दाक्षिण्य आदि मनोहर दोनों प्रकार के राजगुणों को धारण करते थे। अतः राजा दिलीप आश्रित जनों के लिये उसी प्रकार अधृष्य आश्रयदाता थे जिस प्रकार मगरमच्छ आदि जलजन्तुओं और विभिन्न प्रकार के रत्नों के कारण समुद्र अधृष्य आश्रयस्थली बना रहता है अर्थात् मगरमच्छ आदि से डरकर लोग समुद्र से दूर भी भागते हैं तथा रत्नों को प्राप्त करने के लिये उसके पास भी आते हैं।

सन्धि —

भीमकान्तैर्नृपगुणैः — भीमकान्तैः + नृपगुणैः (विसर्ग सन्धि)

बभूवोपजीविनाम् — बभूव + उपजीविनाम् (गुण सन्धि)

अधृष्यश्च — अधृष्यः + च (श्चुत्व सन्धि)

अभिगम्यश्च	— अभिगम्यः + च (श्चुत्व सन्धि)
चाभिगम्यः	— च + अभिगम्यः (दीर्घ सन्धि)
यादोरत्नैरिवार्णवः	— यादोरत्नैः + इवार्णवः (विसर्ग सन्धि)
इवार्णवः	— इव + अर्णवः (दीर्घ सन्धि)

समास—

भीमकान्तैः	— भीमाश्च कान्ताश्च भीमकान्ताः, तैः भीमकान्तैः (द्वन्द्व समास)
नृपगुणैः	— नृपाणाम् गुणाः तैः नृपगुणैः (तत्पुरुष समास)
उपजीविनाम्	— उपजीवन्ति इति उपजीविनः तेषाम् उपजीविनाम् (उपपद समास)
यादोरत्नैः	— यादांसि च रत्नानि च यादोरत्नानि तैः यादोरत्नैः (द्वन्द्व समास)

विशेष — महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप की कठोरता और कोमलता का समन्वय करते हुये उन्हें कभी तिरस्कृत न किये जाने योग्य निरूपित किया है।

रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम्।

न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः॥17॥

प्रसंग — प्रस्तुत पद्य में कालिदास ने दिलीप के राज्य में प्रजाजनों द्वारा मनु के द्वारा निर्धारित नियमों के उल्लंघन न करने का वर्णन किया है।

अन्वयः — नियन्तुः तस्य नेमिवृत्तयः प्रजाः आमनोः क्षुण्णात् वर्त्मनः रेखामात्रमपि न व्यतीयुः।

शब्दार्थ — नियन्तुः = नियामक, तस्य = उस राजा दिलीप के, नेमिवृत्तयः = चक्र के पहिये के समान व्यापार वाले, प्रजाः = प्रजाजनों ने, आमनोः = मनु से लेकर, क्षुण्णाद् = अभ्यस्त किए गये, वर्त्मनः = आचार पर अर्थात् नियम पर अथवा मार्ग पर, परम् = अधिक, रेखामात्रम् = थोड़ा भी, न = नहीं, व्यतीयुः = उल्लंघन किये।

अनुवाद — जिस प्रकार चतुर सारथी के द्वारा चलाये गये रथ के पहिये मार्ग से रंच मात्र भी इधर-उधर नहीं हो पाते। उसी प्रकार सुयोग्य शासक राजा दिलीप के द्वारा शासित प्रजा किंचित् मात्र भी मनु के द्वारा निर्धारित नियमों का उल्लंघन नहीं करती थी।

सन्धि —

क्षुण्णादामनोः	— क्षुण्णात् + आमनोः (जश्त्व सन्धि)
आमनोर्वर्त्मनः	— आमनोः + वर्त्मनः (विसर्ग सन्धि)
प्रजास्तस्य	— प्रजाः + तस्य (विसर्ग सन्धि)
नियन्तुर्नेमिवृत्तयः	— नियन्तुः + नेमिवृत्तयः (विसर्ग सन्धि)

समास—

आमनोः	— मनुम् आरभ्य (तत्पुरुष समास)
नेमिवृत्तयः	— नेमीनां वृत्तिः इव वृत्तिः यासां ताः नेमिवृत्तयः (कर्मधारयगर्भ बहुव्रीहि समास)

विशेष — कालिदास ने दिलीप की शासन की योग्यता का वर्णन करते हुये उन्हें चतुर सारथी के रूप में निरूपित किया है। चतुर सारथी द्वारा संचालित रथ के पहिये मार्ग से

किञ्चित् मात्र भी इधर-उधर नहीं होते। इसी प्रकार मनु के द्वारा राजा और प्रजा के लिये निर्धारित नियमों का उल्लंघन दिलीप के राज्य में प्रजाजनों द्वारा नहीं किया जाता था।

8.2.5 दिलीप की कर-व्यवस्था

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताम्भ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रत्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥18॥

प्रसंग — प्रस्तुत पद्य में कालिदास ने राजा दिलीप की कर-व्यवस्था का उल्लेख किया है।

अन्वयः — स प्रजानाम् एव भूत्यर्थं ताम्भ्यः बलिम् अग्रहीत्, हि रविः सहस्रत्रगुणम् उत्स्रष्टुं रसम् आदत्ते।

शब्दार्थ — सः = वह राजा दिलीप, प्रजानाम् = प्रजाओं के, भूत्यर्थम् = कल्याण के लिए, एव = ही, ताम्भ्यः = उन प्रजाओं से, बलिम् = कर को, अग्रहीत् = लेता था, हि = जैसे, रविः = सूर्य, सहस्रत्रगुणम् = हजार गुना, उत्स्रष्टुम् = देने के लिए, रसम् = जल को, आदत्ते = लेता है।

अनुवाद — वह राजा दिलीप प्रजाओं के कल्याण के लिए ही उनसे कर लेता था, जैसे सूर्य हजार गुना अधिक देने के लिए ही समुद्र आदि से जल को ग्रहण करता है।

सन्धि —

भूत्यर्थम् — भूति + अर्थम् (यण् सन्धि)

समास—

भूत्यर्थम् — भूत्यै इदं भूत्यर्थम् (तत्पुरुष समास)

सहस्रत्रगुणम् — सहस्रत्रम् गुणाः यस्मिन् कर्मणि, तत् सहस्रत्रगुणम् (बहुव्रीहि समास)

विशेष — प्रस्तुत श्लोक में कालिदास ने राजा दिलीप द्वारा निर्धारित कर व्यवस्था का उल्लेख किया है। उनका यह उल्लेख प्राचीन भारतीय राजाओं द्वारा कर निर्धारण के नियमों का भी संकेत करता है। कौटिल्य ने कहा है कि राजा को प्रजा के कल्याण के लिये कर लेना चाहिये। कालिदास सूर्य से दिलीप की तुलना करते हुये करग्रहण की बात करते हैं। जिस प्रकार सूर्य समुद्र आदि से जल लेकर उसे हजारों गुना अधिक करके वृष्टि करता है। उसी प्रकार दिलीप प्रजा द्वारा कर लेकर उससे अधिक उनके कल्याण के कार्यों में व्यय करता था।

8.2.6 दिलीप का सैन्य बल

सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम् ।
शास्त्रेष्व कुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता ॥19॥

प्रसंग — प्रस्तुत पद्य में कालिदास ने महाराज दिलीप के प्रभाव का वर्णन किया है।

अन्वयः — तस्य सेना परिच्छदः (बभूव)। अर्थसाधनं द्वयम् एव (आसीत्)। शास्त्रेषु अकुण्ठिता बुद्धिः, धनुषि आतता मौर्वी च।

शब्दार्थ — तस्य = उस राजा दिलीप की, सेना = सेना, परिच्छदः = छत्रचामर आदि उपकरण के समान शोभा मात्र, बभूव = थी, अर्थसाधनम् = प्रयोजन के साधक, द्वयमेव =

दो ही थे, शास्त्रेषु = शास्त्र आदि में, अकुण्ठिता = अव्याहत, बुद्धि = मति, धनुषि = धनुष में, आतता = आरोपित, मौर्वी = प्रत्यंचा।

रघुवंशम् (प्रथम सर्ग) श्लोक

11-25

अनुवाद— उस राजा दिलीप की सेना तो छत्र चामर आदि के समान शोभा को बढ़ाने वाली मात्र थी उसके प्रयोजन तो दो से ही सिद्ध हो जाते थे — एक तो सम्पूर्ण शास्त्रों में अप्रतिहत बुद्धि और दूसरी धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यंचा।

सन्धि —

परिच्छदस्तस्य — परिच्छदः + तस्य (विसर्ग सन्धि)

शास्त्रेष्वकुण्ठिता — शास्त्रेषु + अकुण्ठिता (यण् सन्धि)

चातता — च + आतता (दीर्घ सन्धि)

समास —

अर्थसाधनम् — अर्थस्य साधनम् अर्थसाधनम् (तत्पुरुष समास)

अकुण्ठिता — न कुण्ठिता अकुण्ठिता (नञ् तत्पुरुष समास)

विशेष — प्रस्तुत श्लोक में कालिदास ने राजा दिलीप के प्रभाव का वर्णन किया है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि राजा दिलीप का सैन्य संग्रह अतीव विशाल था। अनेक दुर्धर्ष वीर उनकी सेना में थे किन्तु वे बार-बार सेना का प्रयोग करके किसी पर आक्रमण नहीं करते थे। उनकी प्रत्यंचा तथा शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त बुद्धि का इतना प्रभाव था कि समस्त कार्य उन्हीं के माध्यम से सिद्ध हो जाते थे। उनके धनुष के प्रभाव को सुनकर शत्रु स्वयं भयभीत हो जाते थे तथा शास्त्रज्ञान से प्राप्त उनकी राजनीति के सामने भी शत्रु स्वयं नतमस्तक रहते थे। अतः सेना के प्रयोग का अवसर ही नहीं होता था। यह सेना एक मात्र उनके लिये शोभा का साधन थी।

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।

फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्कारा प्राक्तना इव॥20॥

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में कालिदास ने महाराज दिलीप के राजनीतिक चातुर्य का वर्णन किया है।

अन्वयः — संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च तस्य प्रारम्भाः प्राक्तनाः संस्काराः इव फलानुमेयाः (आसन्)।

शब्दार्थ — संवृतमन्त्रस्य = मन्त्रणा को गुप्त रखने वाले, गूढाकारेङ्गितस्य = अप्रकाशित चेष्टाओं और आकार वाले, तस्य = उस राजा दिलीप के, प्रारम्भाः = कार्य, प्राक्तनाः = पूर्वजन्म के, संस्काराः = संस्कार के समान, इव = यथा, फलेन = कार्यो से, अनुमेयाः = जानने योग्य।

अनुवाद — राजा दिलीप अपनी सभी प्रकार की मन्त्रणाओं को गुप्त रखते थे तथा अपने बाहर और भीतर के समस्त सुख और दुःख के चिह्नों को अपने आकार तथा संकेतों से प्रकट नहीं करते थे। जिस प्रकार पूर्वजन्म के संस्कार अपने फलों के द्वारा जाने जाते हैं। उसी प्रकार दिलीप के समस्त कार्यो का परिज्ञान कार्य सम्पन्न हो जाने तथा उनका परिणाम प्राप्त हो जाने के बाद ही होता था।

रघुवंशम् तथा कुमारसंभवम् सन्धि —

गूढाकारेङ्गितस्य — गूढाकार + इङ्गितस्य (गुण सन्धि)

समास—

संवृतमन्त्रस्य — संवृतः मन्त्रः यस्य सः संवृतमन्त्रः तस्य संवृतमन्त्रस्य । (बहुव्रीहि समास)

गूढाकारेङ्गितस्य — आकारः च इङ्गितं च आकारेङ्गिते, गूढे आकारेङ्गिते यस्य सः गूढाकारेङ्गितः तस्य गूढाकारेङ्गितस्य (बहुव्रीहि समास)

फलानुमेयाः — फलेन अनुमेयाः फलानुमेयाः (तृतीया तत्पुरुष समास)

विशेष — कालिदास ने दिलीप की राजनीति और कूटनीति का संकेत करते हुये उन्हें “संवृतमन्त्र” कहा है। संवृतमन्त्र से उनका अभिप्राय गुप्त विचारों से है। राजा को अपनी मन्त्रणा को सदैव गुप्त रखना चाहिये। उन्हें कार्य सम्पन्न होने के बाद ही ज्ञात होना चाहिये। कालिदास दिलीप की संवृतमन्त्रता की पूर्वजन्मों के संस्कार से उपमा देते हैं। पूर्वजन्म के संस्कार अपने-अपने अवसर पर फलित होते हैं तथा फल के द्वारा उनका अनुमान किया जाता है। इसी प्रकार दिलीप के समस्त कार्य उनके आकार और संकेत से अनुमेय न होकर फल से अनुमेय थे।

8.2.7 दिलीप के गुण

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।

अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत् ॥21॥

प्रसंग — प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास ने आत्मरक्षा आदि के विषय में दिलीप के गुणों का वर्णन किया है।

अन्वयः — सः, अत्रस्तः, ‘सन्’ आत्मानं, जुगोप, अनातुरः, ‘सन्’ धर्म, भेजे, अगृध्नुः, ‘सन्’ अर्थम्, आददे, असक्तः, ‘सन्’ सुखम्, अन्वभूत्।

शब्दार्थ — सः = राजा दिलीप, अत्रस्तः = निडर होकर, आत्मानम् = अपनी, जुगोप = रक्षा किया, अनातुरः = निरोग होकर, धर्मम् = धर्म की, भेजे = सेवा किया, अगृध्नुः = लोभ रहित, अर्थम् = धन, आददे = संग्रह किया, असक्तः = आसक्ति रहित होकर, सुखम् = सुख का, अन्वभूत् = भोग किया।

अनुवाद — उस राजा दिलीप ने निडर होकर अपनी आत्मरक्षा की। निरोग रहकर धर्म का सेवन किया। उसने लोभ रहित होकर धन का संग्रह किया और आसक्ति रहित होकर सांसारिक सुखों का भोग किया।

सन्धि —

जुगोपात्मानम् — जुगोप + आत्मानम् (दीर्घ सन्धि)।

अगृध्नुराददे — अगृध्नुः + आददे (विसर्ग सन्धि)।

अन्वभूत् — अनु + अभूत् (यण् सन्धि)

समास —

अत्रस्तः — न त्रस्तः, अत्रस्तः (नञ् तत्पुरुष समास)।

अनातुरः — न आतुरः, अनातुरः (नञ् तत्पुरुष समास)।

अगध्नुः — न गृध्नुः, अगृध्नुः (नञ् तत्पुरुष समास)।

रघुवंशम् (प्रथम सर्ग) श्लोक

11-25

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।

गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव।।22।।

प्रसंग — प्रस्तुत पद्य में भी कालिदास ने महाराज दिलीप के राजोचित गुणों का वर्णन किया है।

अन्वयः — ज्ञाने, मौनं, शक्तौ, क्षमा, त्यागे, श्लाघाविपर्ययः 'इत्थं' तस्य, गुणाः गुणानुबन्धित्वात्, सप्रसवाः, इव, 'अभूवन्'।

शब्दार्थ — ज्ञाने = दूसरों की बात को जानकर भी, मौनम् = मौन रहना, शक्तौ = शक्ति होने पर भी, क्षमा = क्षमा करना, त्यागे = दान देकर भी, श्लाघाविपर्ययः = आत्म प्रशंसा ना करना, तस्य = राजा दिलीप के, गुणाः = गुण, गुणानुबन्धित्वात् = विरुद्ध गुणों के सहचारी होकर भी, सप्रसवाः = सहोदरों के, इव = तरह थे।

अनुवाद — राजा दिलीप दूसरों की बात जानकर के भी चुप रहते थे। उसका अपप्रचार नहीं करते थे। उनमें शत्रु से बदला लेने का सामर्थ्य था तथापि वे उन शत्रुओं को क्षमा करते थे। दान देकर भी आत्मप्रशंसा नहीं करते थे। इस प्रकार राजा दिलीप के ज्ञान, शक्ति और त्याग आदि गुण मौन, क्षमा तथा आत्मप्रशंसा आदि विरुद्ध गुणों से युक्त होकर सगे भाई की तरह प्रतीत होते थे।

समास —

श्लाघाविपर्ययः — श्लाघायाः विपर्ययः (षष्ठी तत्पुरुष समास)।

गुणानुबन्धित्वात् — अनुबन्धन्ति इति अनुबन्धिनः, अनुबन्धिनां भावः अनुबन्धित्वम्,
गुणः अनुबन्धित्वम्, गुणानुबन्धित्वम्, तस्मात् (तत्पुरुष समास)।

सप्रसवाः — सह प्रसवः येषाम् ते (बहुव्रीहि समास)।

विशेष — शास्त्रों में ज्ञान का गुण मौन, शक्ति का गुण क्षमा तथा दान का गुण आत्मप्रशंसा का अभाव कहा गया है। राजा दिलीप में ज्ञान के साथ मौन, शक्ति के साथ क्षमा तथा दान के साथ आत्मप्रशंसा का अभावरूप गुण विद्यमान थे। ज्ञान और मौन, शक्ति और क्षमा तथा दान और आत्मप्रशंसा का अभाव परस्पर विरुद्ध धर्म हैं किन्तु राजा दिलीप में ये दोनों परस्पर विरुद्ध गुण सगे भाइयों की तरह बिना किसी विरोध के विद्यमान थे।

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः।

तस्य धर्मरतेरासीद् वृद्धत्वं जरसा विना।।23।।

प्रसंग — इस श्लोक में भी कवि कालिदास ने राजा दिलीप के गुणों का वर्णन किया है।

अन्वयः — विषयैः अनाकृष्टस्य, विद्यानां, पारदृश्वनः, धर्मरतेः, तस्य, जरसा विना, वृद्धत्वम्, आसीत्।

शब्दार्थ — विषयैः = सांसारिक भोगों से, अनाकृष्टस्य = दूर रहने वाले, विद्यानाम् = वेद-वेदांग आदि विद्याओं का, पारदृश्वनः = तत्त्ववेत्ता, धर्मरतेः = धर्मानुरागी, तस्य = उस दिलीप की, जरसा विना = वृद्धावस्था के बिना, वृद्धत्वम् = बुढ़ापा, आसीत् = था।

अनुवाद — राजा दिलीप सांसारिक भोगों से सर्वथा दूर रहते थे। वेद वेदांग आदि विद्याओं के तत्त्ववेत्ता थे। दिलीप धर्म में अत्यन्त अनुराग रखते थे। इस प्रकार वह राजा दिलीप वृद्धावस्था के बिना ही अपने गुणों के कारण वृद्ध जान पड़ते थे अर्थात् अपने ज्ञान आदि गुणों के कारण उनका सम्मान वृद्धों के समान था।

सन्धि —

विषयैर्विद्यानाम् — विषयैः + विद्यानाम् (विसर्ग सन्धि)

धर्मरतेरासीद् — धर्मरतेः + आसीत् (विसर्ग सन्धि)

समास —

अनाकृष्टस्य — न आकृष्टः, अनाकृष्टः, तस्य (नञ् तत्पुरुष समास)

पारदृश्वनः — पारं दृष्ट्वान् इति पारदृष्ट्वा, तस्य (तत्पुरुष समास)

धर्मरतेः — धर्मे रतिः यस्य सः, तस्य (बहुव्रीहि समास)

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।24।।

प्रसंग — प्रस्तुत पद्य में महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के प्रजापालन आदि गुणों का वर्णन किया है।

अन्वयः — प्रजानां विनयाधानात् रक्षणात्, भरणात्, अपि, सः पिता 'अभूत्' तासां पितरः 'तु' केवलं जन्महेतवः "अभूवन्"।

शब्दार्थ — प्रजानाम् = प्रजाजनों में, विनयाधानात् = शिक्षा द्वारा विनम्रता, सदाचार आदि गुणों का आधान करने के कारण, रक्षणात् = रक्षा करने के कारण, भरणात् = भरण-पोषण करने के कारण, अपि = भी, सः = राजा दिलीप, तासाम् = उन प्रजाजनों के, पितरः = पिता, केवलम् = केवल, जन्महेतवः = जन्म देने के कारण मात्र।

अनुवाद — राजा दिलीप अपने प्रजाजनों में शिक्षा द्वारा विनम्रता तथा सदाचार आदि गुणों का आधान करते थे। वे उन प्रजाजनों की रक्षा करते थे तथा भोजन आदि देकर उनका भरण-पोषण भी करते थे। इस प्रकार राजा दिलीप ही उन प्रजाजनों के पिता थे, उनके पिता केवल जन्म के हेतु मात्र थे। जन्म देने के कारण ही उन्हें पिता कहा जाता था।

सन्धि —

पितरस्तासाम् — पितरः + तासाम् (विसर्ग सन्धि)

समास —

प्रजानाम् — प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः, तासाम् (तत्पुरुष समास)

विनयाधानात् — विनयस्य आधानम्, विनयाधानम्, तस्मात् (तत्पुरुष समास)

जन्महेतवः — जन्मनः हेतवः (तत्पुरुष समास)

छन्द — पूर्ववत्।

लक्षणम् — पूर्ववत्।

स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यानपरिणेतुः प्रसूतये।

अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः।।25।।

प्रसंग — प्रस्तुत पद्य में भी महाकवि कालिदास ने राजा दिलीप के दण्ड आदि व्यवस्था का वर्णन किया है।

रघुवंशम् (प्रथम सर्ग) श्लोक

11-25

अन्वयः — दण्डयान्, एव, स्थित्यै, दण्डयतः, प्रसूतये, परिणेतुः, मनीषिणः, तस्य, अर्थकामौ, अपि, धर्मः, एव, आस्ताम्।

शब्दार्थ — दण्डयान् = दण्ड देने योग्य, स्थित्यै = लोकमर्यादा की रक्षा के लिये, दण्डयतः = दण्ड देने वाले, प्रसूतये = सन्तान प्राप्ति के लिये, परिणेतुः = विवाह करने वाले, मनीषिणः = विद्वान्, तस्य = उस राजा दिलीप के, अर्थकामौ = अर्थ और काम, अपि = भी, धर्मः = धर्म, एव = ही, आस्ताम् = थे।

अनुवाद — राजा दिलीप अपराधियों को लोकमर्यादा की रक्षा के लिये अपराध के अनुरूप ही दण्ड देते थे। सन्तान प्राप्ति के लिये ही विवाह करते थे। इस प्रकार उस विद्वान् राजा दिलीप के अर्थ और काम पुरुषार्थ भी धर्म ही थे।

सन्धि —

अप्यर्थकामौ — अपि + अर्थकामौ (यण् सन्धि)

तस्यास्ताम् — तस्याः + ताम् (विसर्ग सन्धि)

समास —

अर्थकामौ — अर्थश्च कामश्च (द्वन्द्व समास)

बोध प्रश्न—

1. सूर्य के पुत्र कौन थे ?
2. दिलीप के पुत्र का क्या नाम था ?
3. दिलीप किस वंश में उत्पन्न हुये थे ?
4. 'सहस्रगुणमुत्प्लष्टुमादत्ते हि रसं रविः' सूक्ति वाक्य किस ग्रन्थ से सम्बन्धित है ?
5. कालिदास ने 'संवृतमन्त्र' विशेषण का प्रयोग किसके लिये किया है ?

अभ्यास प्रश्न —

1. 'सदसद्व्यक्तिहेतवः' से आप क्या समझते हैं ?
2. दिलीप के स्वरूप का वर्णन कीजिये ।
3. दिलीप की प्रज्ञा, आगम, आरम्भ और उदय कैसे थे ?
4. दिलीप अपने उपजीवियों के लिये किस प्रकार अधृष्य थे ?
5. दिलीप के राज्य में प्रजा कैसी थी ?
6. दिलीप की कर-व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।
7. दिलीप के कार्यों का अनुमान कैसे किया जाता था ?
8. 'प्रजानां विनयाधान.....' इत्यादि श्लोक की व्याख्या कीजिये ।

इस इकाई के पन्द्रह श्लोकों में आपने महाराज दिलीप की राजव्यवस्था के बारे में अध्ययन किया। कालिदास के इस वर्णन से प्राचीन राजव्यवस्था पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। उन्होंने सर्वप्रथम महाराज मनु का उल्लेख किया है। जिस प्रकार वेदों में सर्वप्रथम ओंकार होता है उसी प्रकार राजाओं में सर्वप्रथम विद्वानों के पूजनीय सूर्य के पुत्र वैवस्वत नाम के मनु हुए। सूर्य के पुत्र उस मनु के अत्यन्त शुद्ध वंश में, क्षीरसागर में चन्द्रमा के समान राजाओं में श्रेष्ठ परम पवित्र दिलीप नामक राजा हुआ। महाराज दिलीप का वक्षस्थल अत्यधिक चौड़ा था। उनके स्कन्ध वृषभ के स्कन्ध के समान ऊँचे और मजबूत थे। वे शालवृक्ष के समान उन्नत थे तथा उनकी भुजायें अत्यन्त दीर्घ थीं। वे अपने कार्यों के सम्पादन में समर्थ शरीर को धारण करते थे। जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो राजा दिलीप मूर्तिमान् क्षत्रियधर्म हैं। जिस प्रकार सुमेरु पर्वत ने अपनी दृढ़ता, कान्ति तथा ऊँचाई से संसार के सभी दृढ़, कान्तियुक्त तथा ऊँचे पदार्थों को तिरस्कृत करके अपने विस्तार से सम्पूर्ण पृथ्वी को व्याप्त कर लिया है उसी प्रकार राजा दिलीप ने अपने पराक्रम, तेज और विशाल व्यापक शरीर से सबको तिरस्कृत करते हुये समस्त पृथ्वीमण्डल को अपने अधीन कर लिया था। महाराज दिलीप जिस प्रकार विशालकाय और सुन्दर आकार वाले थे वैसी ही आकार के समान उनकी बुद्धि थी। जैसी तीक्ष्ण उनकी बुद्धि थी वैसे ही वे शास्त्राभ्यास करने वाले थे। वे जैसा शास्त्राभ्यास करते थे या शास्त्रों से सीखते थे वैसे ही शास्त्रानुकूल कार्य सम्पन्न करते थे। वे जैसे शास्त्रानुकूल कार्य सम्पन्न करते थे उसी प्रकार की सफलता प्राप्त करते थे।

कालिदास ने दिलीप के गुणों का उल्लेख करते हुये कहा है कि दिलीप तेज और प्रताप आदि भयंकर तथा दया, दाक्षिण्य आदि मनोहर, दोनों प्रकार के राजगुणों को धारण करते थे। अतः राजा दिलीप आश्रित जनों के लिये उसी प्रकार अधृष्य आश्रयदाता थे जिस प्रकार मगरमच्छ आदि जलजन्तुओं और विभिन्न प्रकार के रत्नों के कारण समुद्र अधृष्य आश्रयस्थली बना रहता है अर्थात् मगरमच्छ आदि से डर कर लोग समुद्र से दूर भी भागते हैं तथा रत्नों को प्राप्त करने के लिये उसके पास भी आते हैं। जिस प्रकार चतुर सारथी के द्वारा चलाये गये रथ के पहिये मार्ग से रंच मात्र भी इधर-उधर नहीं हो पाते। उसी प्रकार सुयोग्य शासक राजा दिलीप के द्वारा शासित प्रजा किंचित् मात्र भी मनु के द्वारा निर्धारित नियमों का उल्लंघन नहीं करती थी।

कालिदास ने राजा दिलीप की कर-व्यवस्था का उल्लेख करते हुये कहा है कि दिलीप प्रजाओं के कल्याण के लिए ही उनसे कर लेता था, जैसे सूर्य हजार गुना अधिक देने के लिए ही समुद्र आदि से जल को ग्रहण करता है। राजा दिलीप की सेना तो छत्र चामर आदि के समान शोभा को बढ़ाने वाली मात्र थी उसके प्रयोजन तो दो से ही सिद्ध हो जाते थे — एक तो सम्पूर्ण शास्त्रों में अप्रतिहत बुद्धि और दूसरी धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यंचा। राजा दिलीप अपनी सभी प्रकार की मन्त्रणाओं को गुप्त रखते थे तथा अपने बाहर और भीतर के समस्त सुख और दुःख के चिह्नों को अपने आकार तथा संकेतों से प्रकट नहीं करते थे। जिस प्रकार पूर्वजन्म के संस्कार अपने फलों के द्वारा जाने जाते हैं। उसी प्रकार दिलीप के समस्त कार्यों का परिज्ञान कार्य सम्पन्न हो जाने तथा उनका परिणाम प्राप्त हो जाने के बाद ही होता था। राजा दिलीप मौन क्षमा आदि अनेक गुणों से युक्त थे।

इस प्रकार इस इकाई में आपने दिलीप और उनकी राजव्यवस्था से सम्बन्धित पन्द्रह श्लोकों को पढ़ा तथा यह जाना कि प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था अत्यन्त दृढ़ थी।

8.4 शब्दावली

छन्दसाम्	=	वेदों के
प्रणवः इव	=	ओंकार के समान
व्यूढोरस्कः	=	विशाल वक्षस्थल वाले
क्रान्त्वा	=	व्याप्तकर
ऊर्वीम्	=	पृथ्वी को
आगमैः	=	शास्त्रों के अनुसार से
सदृशागम	=	शास्त्र का अभ्यास करने वाले
भीमकान्तैः	=	भयकर और सुन्दर
अभिगम्यश्च	=	आश्रयदाता
अधृष्यः	=	अभिभव के अयोग्य
आमनोः	=	मनु से लेकर
क्षुण्णाद्	=	अभ्यस्त किए गये
वर्त्मनः	=	आचार पर
व्यतीयुः	=	उल्लंघन किये
रसम्	=	जल को
आदत्ते	=	लेता है
अग्रहीत्	=	लेता था
आतता	=	आरोपित
मौर्वी	=	प्रत्यंचा
अकुण्ठिता	=	अव्याहत
फलेन	=	कार्यों से
अनुमेयाः	=	जानने योग्य
अगृध्नुः	=	लोभ रहित
सप्रसवाः	=	सहोदरों के
श्लाघाविपर्ययः	=	आत्म प्रशंसा ना करना
पारदृश्वनः	=	तत्त्ववेत्ता
विनयाधानात्	=	शिक्षा द्वारा विनम्रता

8.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- 1) रघुवंशमहाकाव्यम्, डॉ. कृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011।
- 2) रघुवंशम्, प्रो. हरि दामोदर वेलणकर, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्, नवदेहली, 2011।

- 3) कालिदास ग्रन्थावली, ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2012।
- 4) संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, कस्तूरबा नगर, सिगरा, वाराणसी, 2001।
- 5) वृत्तरत्नाकरः, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011।
- 6) अमरकोश, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, बंगलो रोड, दिल्ली, 2011।
- 7) संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गौरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009।
- 8) संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास, (चतुर्थ खण्ड), प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1967।
- 9) संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास (1-4 खण्ड), प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, नई दिल्ली, 2018।

8.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न –

- 1) मनु।
- 2) रघु।
- 3) रघुवंश।
- 4) रघुवंश महाकाव्य।
- 5) राजा दिलीप।

अभ्यास प्रश्न–

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 9 कुमारसम्भव (पञ्चम सर्ग) श्लोक 1-10

इकाई की रूपरेखा

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 शिव प्राप्ति हेतु पार्वती तपस्या का वर्णन
- 9.3 सारांश
- 9.4 शब्दावली
- 9.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 9.6 बोध / अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में निर्धारित 'पार्वतीतपः फलोदय' नामक पञ्चमसर्ग (कुमारसम्भव) के पाठ्यांश के अध्ययन से आप :

- छात्र श्लोको के अर्थ तो जानेंगे ही, साथ ही कुमारसम्भव के काव्यवैशिष्ट्य को भी हृदयगत कर सकेंगे।
- पवित्र लक्ष्य की सिद्धि के लिए किये जा सकने वाले प्रयत्नों की पराकाष्ठा क्या हो सकती है यह भी अपर्णा (पार्वती) की दुष्कर तपश्चर्या से ज्ञात हो सकेगा।
- यहाँ पार्वती का वर्णित चरित्र प्रेरक व युवतियों के लिए आदर्श है – यह भी जान सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

कामदेव का आनिध्य रूप भी जब शिव को आकृष्ट न कर सका तो पार्वती को अपने रूप सौन्दर्य की व्यर्थता का भान हो गया और वे अपनी सुन्दरता की निंदा करने लगी – 'निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती' – क्योंकि जो सौन्दर्य प्रियतम को रिझा न सके वह किस काम का ? फिर तो उन्होंने अपने सौन्दर्य को तपोव्रत से अमोघ बनाने की ठान ली – इयेष सा कतुमवन्ध्यरूपताम और तपश्चरण हेतु हिमालय के एक शिखर (गौरीशिखर) पर जा पहुँची। उसके पश्चात् पार्वती ने जो घोर तपस्या प्रारम्भ की, मुख्यतः उसी का वर्णन इस पाठ्यांश में है।

9.2 शिव प्राप्ति हेतु पार्वती तपस्या का वर्णन

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।

निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ।।1।।

अन्वयः— पार्वती तथा समक्षं मनोभवं दहता पिनाकिना भग्नमनोरथा सती हृदयेन रूपं निनिन्द, हि चारुता प्रियेषु सौभाग्यफला भवति ।।1।।

प्रसंग — शिव के तृतीय नेत्र की अग्नि से कामदेव के भस्मसात् हो जाने के पश्चात् अब पञ्चम सर्ग में पार्वती की तपश्चर्या के प्रकार का वर्णन प्रारम्भ किया जा रहा है।

अनुवाद— इस प्रकार अपनी आँखों के सामने ही शंकर जी द्वारा कामदेव को जलाते हुए देखकर पार्वती जी की अभिलाषा चूर-चूर हो गई। वह अपने रूप को धिक्कारने लगी क्योंकि सौन्दर्य की सफलता तभी है जब उससे प्रिय को मुग्ध किया जा सके ।।1।।

शब्दार्थ —पार्वती = पर्वत अर्थात् हिमालय की पुत्री। तथा = उस प्रकार से। यह शब्द तृतीय सर्ग के 72 वें श्लोक की शिव द्वारा कामदेव को भस्म कर देने वाली घटना की ओर संकेत करता है।

समासाः—मनोभवम्—मनसि भवः (स० तत्पु०) मनोभवः, तम्।

भग्नमनोरथा— भग्नः मनोरथः सौभाग्यफला—सौभाग्यं फलं यस्याः (बहु०) सा।

अलंकारः— अर्थान्तरन्यास

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।

अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ।।2।।

अन्वयः—सा समाधिम् आस्थाय तपोभिः आत्मनः अवन्ध्यरूपतां कर्तुम् इयेष अन्यथा तथाविधं प्रेम तादृशः पतिश्च तद् द्वयं कथं वा अवाप्यते ।।2।।

प्रसंग—यहाँ पार्वती के तपश्चरण के संकल्प का वर्णन किया जा रहा है।

अनुवाद— उन्होंने समाधि लगाकर अपनी तपस्या से अपने रूप को सफल बनाने का विचार किया क्योंकि किसी अन्य उपाय के द्वारा पति का वैसा उत्कृष्ट प्रेम तथा शंकर जी जैसा (मृत्युंजयी) पति—ये दोनों ही मिल भी कैसे सकते हैं? ।।2।।

शब्दार्थ —समाधिम् = एकाग्रता को। आस्थाय = लगाकर अथवा आश्रय प्राप्त कर। तपोभिः = तपस्या के द्वारा। अवन्ध्यरूपताम् = सफल सौन्दर्य इयेष इच्छा की। तथाविधम् = वैसा—(यह प्रेम का विशेषण है) उस प्रकार का प्रेम जो शिव की प्राप्ति करा सके। प्रेम = स्नेह। यह प्रेमन् शब्द की प्रथमा विभक्ति का एकवचन का रूप है। तादृशः = वैसा—उसप्रकार का। पतिः =वल्लभः। भारतीय स्त्रियाँ अपने पति के विषय में दो ही बातों को विशेष रूप से चाहा करती हैं— (1) दृढ़ स्नेह, (2) दीर्घ जीवन। इस श्लोक में तथाविधं प्रेम तथा 'तादृशः पतिः' इन दोनों सेभी उपर्युक्त अभिप्राय ही ध्वनित होता है। द्वयम् = ये दोनों। अवाप्यते = प्राप्त होता है।

अतीव दुष्कर मनोरथ की पूर्ति के निमित्त मनु ने भी अपनी स्मृति में तप नामक साधन को ही उचित ठहराया है।

समासाः— अवन्ध्यरूपताम्—न वन्ध्यम् (नञ्तत्पु०) अवन्ध्यम् अवन्ध्यं च तद्रूपम् (कर्म०) अवन्ध्यरूपम् तस्य भावः अवन्ध्यरूपताम्। तथाविधम्—तथा विधा यस्य (बहु०) तत्।

निशम्य चैनां तपसे कृतोद्यमां सुतां गिरीशप्रतिसक्तमानसाम् ।

उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ।।3।।

अन्वयः— मेना गिरीशप्रतिसक्तमानसां तपसे कृतोद्यमां सुतां च निशम्य एनां वक्षसा परिरभ्य महतः मुनिव्रतात् निवारयन्ती 'सती' उवाच ।।3।।

प्रसंग— यहाँ माता मेना द्वारा पार्वती को तपस्या के सङ्कल्प से रोकने की चर्चा है —

अनुवाद— जब (पार्वती की सखी के द्वारा) मेना को यह बात मालूम हुई कि पार्वती का चित्त शिवजी में आसक्त हो गया है और वह तपस्या करने के लिए कृतसङ्कल्प है, तब वह अपनी पुत्री को गले से लगाकर तपस्या से निवृत्त करने के लिए इस प्रकार कहने लगीं ॥3॥

शब्दार्थ —मेना — पार्वती की माता, हिमालय की पत्नी, गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्—शिव के प्रति आसक्त हो गया है चित्त जिसका (पार्वती का विशेषण) ऐसी पार्वती, सुताम्—पुत्री को पार्वती को, तपसे तपः कर्तुम्— तप करने के निमित्त ,कृतोद्यमाम्—किया है प्रयास जिसने तप करने के लिये दृढ़ निश्चय रखने वाली, निशम्य —सुनकर, वक्षसा—हृदय से ,परिरम्भ्य— आलिंगन करके, हृदय से चिपटाकर, परि उपसर्ग के साथ प्रयुक्त रभु धातु का अर्थ आलिंगन करना होता है। मुनिव्रतात्— मुनियों का व्रत अर्थात् तपस्या से निवारयन्ती निवारण करती हुई, रोकती हुई। उवाच — बोली— इस क्रिया का कर्ता मेना तथा कर्म एनां अर्थात् पार्वती है।

समासाः —गिरीशप्रतिसक्तमानसाम्— गिरे : ईशः (म० तत्पु०) गिरीशः गिरीशे प्रतिसक्तं मानसं यस्याः (बहु०) सा, ताम्।

कृतोद्यमाम्—कृतः उद्यमः यया (बहु०) सा कृतोद्यमाम्।

मुनिव्रतात् —मुनेः व्रतम् (पतत्पु०) मुनिव्रतम्, तस्मात्।

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवता स्तपः क्व वत्से ? क्व च तावकं वपुः ?

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥4॥

अन्वयः— हे वत्से ! मनीषिताः देवताः गृहेषु सन्ति । तपः क्व ? तावकं वपुश्च क्व ? पेलवं शिरीषपुष्पं भ्रमरस्य पदं सहेत, पतत्रिणः पुनः पदं न सहेत ॥4॥

प्रसंग — तपस्या से पार्वती को निवृत्त करने की इच्छा से मेना कहती है—

अनुवाद— वत्से ! अभिलाषा पूर्ण करने वाले देवता तो तुम्हारे घर में विद्यमान हैं। (तुम उन्हीं की आराधना करो) । कहाँ कठोर तपस्या और कहाँ तुम्हारा इतना कोमल शरीर ? शिरीष का कोमल फूल भौरों के सुकुमार चरण के भार को तो सहन कर सकता है किन्तु पक्षियों के चरण—भार को नहीं सहन कर सकता ॥4॥

शब्दार्थ —**मनीषिताः**— मन चाहे । **क्व**— कहाँ दो वस्तुओं के साथ जब **क्व** शब्द का दो बार प्रयोग किया जाता है, तब वह अन्तर की अधिकता का द्योतक होता है — कहाँ यह और कहाँ वह? **वपुः**— शरीर। मूल शब्द है — वपुष्। इसके रूप वपुः, वपुषी, वपूषि इत्यादि तपः और वपुः दोनों ही (भवति) क्रिया के कर्ता है यहाँ क्रिया पद लुप्त है। इसका अर्थ— कहाँ (कठोर) तप और कहाँ तुम्हारा (कोमल) शरीर। **भाव** — तुम्हारा यह सुकोमल शरीर तपस्या के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। **शिरीषपुष्पम्—शिरीष** का फूल। यह फूल कोमलता के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ पर यह सहेत क्रिया का कर्ता है। **पतत्रिणः** = पक्षी के।

समासाः— मनीषिताः— मनसः ईषा (प० तत्पु०) मनीषा, मनीषा सञ्जाता येभ्यः (बहु०) ते शिरीषपुष्पम् — शिरीषस्य पुष्पम् (य० तत्पुट) शिरीषपुष्पम्।

अलङ्कार —उक्त पद्य में दृष्टान्त अलंकार है।

इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात् ।

कईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् ॥5॥

अन्वयः— इति अनुशासती मेना ध्रुवेच्छां सुताम् उद्यमात् नियन्तुं न शशाक ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं मनः निम्नाभिमुखं पयश्च कः प्रतीपयेत्? ॥5॥

प्रसंग — अटल इच्छा वाली पार्वती को माता मैना उसके संकल्प से डिगा न सकी, यह प्रतिपादित किया जा रहा है—

अनुवाद— इस प्रकार समझा कर भी मेना अपनी दृढ़ संकल्पवाली पुत्री पार्वती को तपस्या करने के उद्यम से रोकने में समर्थ न हो सकी। अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्पवाले मन तथा नीचे की ओर बहते हुए जल प्रवाह को घुमा देने में भला कौन समर्थ हो सकता है? ॥5॥

शब्दार्थ — इति इस प्रकार, यह यहाँ उपर्युक्त दो पद्यों में वर्णित कथन की ओर संकेत करता है। साथ ही अनुशासती का कर्म भी है। अनुशासती उपदेश देती हुई। ध्रुवेच्छाम् — दृढ़ संकल्प से परिपूर्ण यह सुता का विशेषण है। उद्यमात्— प्रयत्न से (तपस्या करने से)। नियन्तुम् —रोकने के लिये, न शशाक— समर्थ न हो सकी। इस क्रिया का कर्ता मेना है। ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयम् (अपनी) अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति में दृढ़ निश्चय रखने वाला यह मन का विशेषण है। निम्नाभिमुखम् — नीचे (ढलान) की ओर बहता हुआ जल प्रतीपयेत्— पलट सकता है अथवा विपरीत लौटा सकता है।

समासाः—ध्रुवेच्छाम् ध्रुवा इच्छा यस्याः (बहु०) सा ध्रुवेच्छा, ताम्।

ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयम्— ईप्सितश्चासा अर्थः (कर्म०) ईप्सितार्थः स्थिरः निश्चयः यस्य (बहु०) तत् ।

निम्नाभिमुखम्— निम्ने अभिमुखम् (स० तत्पु०) तत्।

अलंकारः— उक्त पद्य में दीपक से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

कदाचिदासन्नसखी मुखेन सा मनोरथज्ञं पितरं मनस्विनी ।

अयाचतारण्य निवासमात्मनः फलोदयान्ताय तपः समाधये ॥6॥

अन्वयः—कदाचित् मनस्विनी सा मनोरथज्ञं पितरम् आसन्नसखीमुखेन फलोदयान्ताय तपः समाधये आत्मन अरण्यनिवासम् अयाचत ॥6॥

प्रसंग — यहाँ पार्वती द्वारा अपने पिता हिमालय से तपश्चर्या हेतु वनवास की आज्ञा माँगे जाने की बात कही जा रही है—

अनुवाद— अवसर पाकर एक बार पार्वती ने अपने मन की अभिलाषा को जानने वाले पिता से, अपनी समीपवर्तिनी सहेली द्वारा वन में जाकर तब तक तपस्या करने की अनुमति देने की प्रार्थना की जब तक कि अभीष्ट सिद्ध न हो जाये ॥6॥

शब्दार्थ —कदाचित् = किसी समय मनस्विनी = दृढ़ संकल्प वाली अथवा स्वाभिमानी। अनेक विघ्नों के उपस्थित होने पर भी जो प्रारम्भ किये गये कार्य को नहीं छोड़ा करता है वह 'मनस्वी' कहा जाता है। मनस्वी का लक्षण—

प्रारब्धं न त्यजति यः स मनस्वीति कथ्यते ।

पार्वती ने भी अभीष्टकाल की प्राप्ति पर्यन्त तप करने का निश्चय किया था तथा वह उसमें आगे चलकर सफल भी हुई है, अतः उसी के लिये “मनस्विनी” शब्द का प्रयोग किया गया है और वह उक्त अर्थ में सार्थक भी है। **मनोरथज्ञम्** = (पार्वती को) अभिलाषा को जानने वाला। **आसन्न सखीमुखेन** = परम विश्वासपात्र अथवा अभिन्नहृदय सखी के माध्यम से। **फलोदयान्ताय** = फल प्राप्ति होने तक। यह **तपःसमाधये** का विशेषण है। **तपःसमाधये** – तपश्चरण अथवा नियम अथवा व्रत की सिद्धि के लिये यहाँ पर तादये चतुर्थी वाच्या से चतुर्थी विभक्ति हुई है। **अरण्यनिवासम्** = वनवास को यह ‘अयाचत’ क्रिया का मुख्य कर्म है। **अयाचत** = माँगा।

समासाः—मनोरथज्ञम् – मनोरथं जानाति (उपपदतत्पु.) इति मनोरथः तम्
आसन्नसखीमुखेन— आसन्ना च असौ सखी तस्या मुखम् तेनआसन्नसखीमुखेन
फलोदयान्ताय— फलस्य उदयः स अन्तः यस्य स तस्मै
अरण्यनिवासम् –अरण्ये निवासः अरण्यनिवासः (सप्तमी तत्पु.)

अथानुरुपाभिनिवेशतोषिणा कृताभ्यनुज्ञा गुरुणा गरीयसा ।

प्रजासु पश्चात्प्रथितं तदाख्यया जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत् ॥७॥

अन्वयः— अथ गौरी अनुरुपाभिनिवेशतोषिणा गरीयसा गुरुणा कृताभ्यनुज्ञा सती, पश्चात् प्रजासु तदाख्यया प्रथितं शिखण्डिमत् शिखरं जगाम ॥७॥

प्रसंग – पिता से तपस्या की अनुमति पाकर पार्वती के तपोवन गमन का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं—

अनुवाद— पार्वती के इस उचित आग्रह से संतुष्ट होकर पूज्य पिता हिमालय ने उसे वन में जाकर तपस्या करने की आज्ञा दे दी। पार्वती मयूरों के झुण्ड से भरी हुई हिमालय की उस चोटी पर चली गई जो बाद में उन्हीं के नाम पर गौरी शिखर के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥७॥

शब्दार्थ —**अनुरुपाभिनिवेशतोषिणा**— योग्य आग्रह से संतुष्ट हुये। यह गुरुणा का विशेषण है। शिव सदृश असाधारण पति को प्राप्त करने के लिये तपस्या करना पार्वती का आग्रह था जो वस्तुतः उनके अनुरूप ही था। इसी कारण उसके पिता हिमालय उसके इस निक्षय से संतुष्ट भी थे। **गरीयसा**— अत्यन्त पूज्य अर्थ वाले **गुरुणा** – पिता से ‘गुरुगोष्यति पित्राद्यो’ इत्यमरः। **कृताभ्यनुज्ञा**— दी जा चुकी थी, अनुमति जिसको ऐसी (पार्वती)। **तदाख्यया**— उसी (पार्वती) के नाम से। यहाँ करण में तृतीया विभक्ति हुई है। **प्रथितम्** – प्रसिद्ध शिखण्डिमत् मयूरों अथवा तपस्वियों से युक्त। शिखण्ड शब्द के यहाँ वह (चोटी) और चूड़ा ये दो अर्थ होते हैं ‘शिखण्डो चहचूडयो’ मेदिनीकोष शिखण्ड शब्द के चोटी तथा जटा ये दो अर्थ होने के कारण शिखण्डिन शब्द के भी ये दो अर्थ होते हैं— (1) मोर (2) तपस्वी ‘शिखण्डी मुनिभेदं स्यात् मयूरेऽपि च कुच्यते। **शिखरम्**— चोटी को शिखण्डिमत् शिखर का विशेषण है। वह शिखर जिसे पार्वती ने अपनी तपस्या के लिये चुना था, मोरों से युक्त था, उस स्थान पर हिंसक जन्तु नहीं रहा करते थे। अतः यह स्थल तपस्या की दृष्टि से उत्तम था अथवा वह स्थल तपस्वी जनों से युक्त था इस कारण पार्वती उस शिखर पर गई।

समासाः— अनुरुपाभिनिवेशतोषिणा —अनुरुपश्चासौ अभिनिवेशः (कर्म०)
अनुरुपाभिनिवेशः तेन तुष्यतीति अनुरुपाभिनिवेश तोष्यति

कृताभ्यनुज्ञा— कृता अभ्यनुज्ञा यस्यै सा (बहु० समास) ।

तदाख्यया— तस्या आख्यातदाख्या तया तदाख्यया ।

गरीयसा— अतिशयेन गुरुः गरीयान् तेन गरीयसा

विमुच्य सा हारमहार्यनिश्चया विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम् ।

बबन्ध बालारुणबभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति॥८॥

अन्वयः— अहार्यनिश्चया सा विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनं हारं विमुच्य बालारुणबभ्रु पयोधरोत्सेधविशीर्ण संहति वल्कलं बबन्ध॥८॥

प्रसंग — यहाँ से आगे पाँच पद्यों में पार्वती ने तपस्या की जो तैयारी की उसका वर्णन है। प्रस्तुत श्लोक में उपक्रम करते हुए पहले वल्कल-बन्धन का वर्णन किया जा रहा है।

अनुवाद— दृढ़ निश्चय वाली पार्वती ने अपनी उस मोती की माला को उतार दिया जिसकी चंचल लड़ियों से उनके स्तनों का चंदन मिट गया था। अब उन्होंने उन स्तनों पर प्रातः कालीन सूर्य के समान लाल रंग का वल्कल बाँध लिया जो उनके स्तनों के उभार के कारण कुछ फट सा गया था॥८॥

शब्दार्थ —अहार्यनिश्चया— दृढ़ निश्चय वाली, यह सा का विशेषण है। **विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम्—**हिलती हुई लड़ियों से चन्दन को पोंछने वाले (प्रविलुप्त पोंछने वाले) हार को यह हारम् का विशेषण है। **बालारुणबभ्रु—**प्रातःकालीन सूर्य के सदृश लाल-पीला। **बालः—** नवोदित अरुण सूर्य । **बभ्रु—** पिंगल। यह वल्कलम् का विशेषण है। **पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति—** स्तनों की ऊँचाई से छिन्न अवयव वाली विशीर्ण विघटित, छिन्न भिन्नः। यह भी वल्कलम् का विशेषण। **वल्कलम्—** वृक्षों की छाल को। **बबन्ध—** धारण कर लिया, बाँध लिया।

समासाः— अहार्यनिश्चया —न हार्यः (नञ् तत्पु०) अहार्यः निश्चयो यस्याः सा (बहु०) विलोलयष्टिप्रविलुप्तचन्दनम् विशेषण लोलाः (प्रादितत्पु०) विलोलाः विलोलाश्च ता यष्टयः (कर्म०) विलोलयष्टयः प्रकर्षण विलुप्तम्—प्रविलुप्तम्— (सुप्सुपासमास) प्रविलुप्तं चन्दनं येन तत् (बहु०) प्रविलुप्तचन्दनः

विलोलयष्टिभिः प्रविलुप्तचन्दनः (तृ० तत्पु०), तम्।

बालारुणबभ्रुः — बालश्वासौ अरुणः (कर्म०) बालारुणः, स इव बभ्रुः बालारुण (कर्म०)

पयोधरोत्सेधविशीर्णसंहति — पयोधरयोः उत्सेधः (ष० तत्पु०) पयोधरोत्सेधः, पयोधरोत्सेधेन विशीर्णा (तृ० तत्पु०) सा संहतिः यस्य (बहु०) तत्।

अलंकारः— यहाँ परिवृत्ति नामक अलङ्कार है।

यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैर्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम् ।

न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते॥९॥

अन्वयः— तदाननं प्रसिद्धैः शिरोरुहैः यथा मधुरम् अभूत्, जटाभिरपि एवं अभूत्। पङ्कजं षट्पदश्रेणिभिः एव न, किन्तु सशैवलासङ्गं सदपि प्रकाशते॥९॥

प्रसंग — तपस्या के समय जटाधारिणी होते हुए भी पार्वती कितनी सुमुखी प्रतीत हो रही थी, यह बताया जा रहा है।

अनुवाद— पार्वती का मुख जैसे पहले सजे सजाए बालों से सुन्दर लगा करता था वैसे ही जटाओं से भी सुशोभित लग रहा था। कमल भौरों की पंक्तियों के साथ जितना सुन्दर लगता है उतना ही सेवारों से घिरा होने पर भी सुन्दर प्रतीत होता है। 19।

शब्दार्थ —तदाननम् — उसका मुँह। **प्रसिद्धैः**— सुसज्जित, अलङ्कृत। यह शिरोरुहैः का विशेषण है। **शिरोरुहैः**— बालों से। **जटाभिः**— जटाओं से जिन केशों को काटा छाँटा नहीं जाता तथा जो स्वाभाविक रूप से बढ़ते रहा करते हैं और जिनको पुष्पादि के द्वारा सजाया नहीं जाता, उन्हीं का नाम जटा है। वस्तुतः पार्वती का स्वाभाविक सौन्दर्य जटाओं को धारण कर लेने पर भी पूर्ववत् ही बना रहा, क्योंकि मनोहर आकृतियों के लिये सभी वस्तुयें अलङ्कार बन जाया करती हैं। **षट्पदश्रेणिभिः**— भ्रमर समूह से। **प्रकाशते** — चमकता है। **सशैवलासङ्गम्**— सिवार अथवा कोई के साथ भी। **आसङ्गः** — साहचर्य, साथ। **न षट्पदश्रेणिभिरेव प्रकाशते**— यह कालिदास की प्रसिद्ध सूक्ति है। इस प्रकार के भाव को प्रदर्शित करने वाली इनके कुछ अन्य ग्रन्थों में भी सूक्तियाँ मिलती हैं 'किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्' (अभिज्ञान० 1 / 20) अहो सर्वास्ववस्थास्वनवद्यता रूपस्य' (मालविकाग्निमित्र), अहो 'सर्वास्ववस्थासुरमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्' (शाकुन्तल अङ्क— 6)। अन्य कवियों की रचनाओं में भी न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्' (किरातार्जुनीयम् 4 / 21) 'रम्याणां विकृतिरपि प्रियं तनोति (किरात 7 / 5) 'सर्वशोभनीयं सुन्दरं नाम' (प्रतिमानाटक—1), 'सर्वमलङ्कारो भवति सुरुपाणाम्' (अविमारक 2), 'स्वभावसुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते(दृष्टान्तशतक 49) (9)

समासाः —तदाननम्— तस्याः आननम् (ष० तत्पु०)।

सशैवलासङ्गम्—शैवलानाम् आसङ्गः (प० तत्पु०) शैवलासङ्गः शैवलासङ्गेन सह वर्तते (बहु) इति तत्।

अलंकारः— इस पद्य में 'प्रतिवस्तूपमा' अलङ्कार है।

प्रतिक्षणं सा कृतरामविक्रियां व्रताय मौज्जीं त्रिगुणां बभार याम् ।

अकारि तत्पूर्वनिबद्धया तथा सरागमस्या रसनागुणास्पदम् ।।10।।

अन्वयः — सा प्रतिक्षणं कृतरामविक्रियां त्रिगुणां यां मौज्जीं व्रताय बभार, तत्पूर्वनिबद्धया तथा अस्याः रसनागुणास्पदं सरागम् अकारि ।।10।।

प्रसंग —तपस्या के लिए अत्यावश्यक मौज्जीबन्धन के विषय में कहा जा रहा है—

अनुवाद— व्रत पालन के लिये पार्वती ने करधनी के बदले में तीन लड़ों से बँटी हुई, प्रतिक्षण रोमांच पैदा कर देने वाली मूँज की मेखला पहन ली, जिसने उसके पूर्व बाँधी गई करधनी के नितम्ब स्थित स्थान को लाल रंग का बना दिया ।।10 ।।

शब्दार्थ —**व्रताय** — तपस्या करने के निमित्त। यहाँ क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानितः से चतुर्थी विभक्ति होतो है। **प्रतिक्षणम्**— प्रत्येक क्षण। **कृतरामविक्रियाम्**— रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली यह मौज्जी का विशेषण है। मेखला अत्यधिक कठोर होने के कारण रोमाञ्च उत्पन्न कर रही थी। **त्रिगुणाम्** — तीन लड़ की। **गुण**— रस्सी, आवृत्ति लड़ा यह भी मौज्जी' का विशेषण है। **मौज्जी**— मूँज से बनी हुई। यह बभार क्रिया का कर्म है। यह मूँज की डोरी से बनी हुई तीन लड़ियों की करधनी के सदृश होती है, इसी का नाम मूँज की मेखला है। **बभार**— धारण किया, पहन लिया।

तत्पूर्वनिबद्धया— जो जीवन में प्रथम बार ही बाँधी गई थी यह 'तया' का विशेषण है, जो मेखला के लिये प्रयुक्त हुआ है। **रसनागुणास्पदम्** — मेखला (करधनी) बाँधने का स्थान अर्थात् कमर को, रसना—मेखला, करधनी। **गुण**— डोरी। **आस्पदम्**— स्थान। **सरागम्**— लाल, रक्तवर्ण का। **अकारि**— कर दिया।

समासाः — प्रतिक्षणम् —क्षणे क्षणे इति (अव्ययीभावः)।

कृतरोमविक्रियाम् —रोम्णां विक्रिया (प० तत्पु०) रोमविक्रिया कृता रोमविक्रिया यया सा (बहु०) ।

त्रिगुणाम्—त्रयः गुणाः यस्याः सा (बहु०)

रसनागुणास्पदम् —रसनायाः गुणः (प० तत्पु०) रसनागुणः रसनागुणस्य आस्पदम् (प० तत्पु०) रसनागुणास्पदम् ।

सरागम् —रागेण सहितम् (तृ. तत्पु०)

अलंकारः—उक्त पद्य में 'परिवृत्ति' नामक अलङ्कार ध्वनित होता है।

बोध / अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न—

1. प्रियेषु सौभाग्यफला हि
2. क ईप्सितार्थस्थिरनिश्चयं
3. जगाम शिखरं शिखण्डिमत्
4. निवारयन्ती महतो

अभ्यास प्रश्न—

पार्वती की विशेषताओं को अपने शब्दों में लिखिए ।

9.3 सारांश

- प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि सुकोमल पार्वती किस प्रकार कठिन तपस्या करने के लिए अटल रही।
- शिवजी की प्राप्ति हेतु कृतसंकल्प वाली पार्वती कठिन तपस्या करने लगी।
- आपने जाना कि पार्वती ने अपने सुकोमल शरीर की ओर ध्यान न देकर केवल लक्ष्य प्राप्ति की ओर ही ध्यान दिया।
- लक्ष्य निश्चित होने पर लक्ष्य प्राप्ति की ओर अनवरत प्रयास अवश्य ही सफलता दिलाते हैं, हमें धैर्यपूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिए, जब तक फल प्राप्ति न हो।

9.4 शब्दावली

1. निर्मल— स्वच्छ, पवित्र
2. ध्रुवम् —निश्चित ही
3. पराकाष्ठा —चरम सीमा, उच्चता

10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- 1) कुमारसम्भवम् (पञ्चम सर्ग), व्याख्याकार डा. विश्वनाथ शर्मा
- 2) संस्कृत साहित्य का इतिहास – डा मधु सत्यदेव
- 3) संस्कृत कवि दर्शन – भोला शंकर व्यास
- 4) कुमारसम्भवम् (1-5 सर्ग), व्याख्याकार डा. श्रीकृष्ण त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली

बोध / अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर

- 1 चारुता
- 2 मनः
- 3 गौरी
- 4 मुनिव्रतात्

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर—

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 कुमारसम्भवम् (पञ्चम सर्ग) श्लोक 11–20

इकाई की रूपरेखा

- 10.0 उद्देश्य
- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 शिव प्राप्ति हेतु पार्वती तपस्या का वर्णन
- 10.3 सारांश
- 10.4 शब्दावली
- 10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 10.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

- इकाई 10 में आप 'पार्वती तपः फलोदय' नामक पंचम सर्ग के श्लोक 11–20 का अध्ययन करेंगे।
- इनके अध्ययन से आपको यह विदित होगा कि किसी कार्य की सिद्धि हेतु तपस्या रूपी व्रत का पालन आवश्यक है, तभी लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव होता है।
- श्लोकों के अध्ययन से यह स्पष्ट होगा कि पार्वती ने एक— एक करके सभी भोग विलासिता की वस्तुओं का त्याग कर दिया एवं दिन प्रतिदिन तपस्या को और भी कठोर कर दिया।
- मखमल के बिस्तर के स्थान पर मूँज का आसन।
- रेशमी वस्त्रों के स्थान पर वल्कल वस्त्र।
- स्वर्ण करधनी के स्थान पर मूँज से बनी करधनी को अपना आभूषण बनाया।
- इकाई के अध्ययन से छात्रों को यह उपदेश मिलेगा कि 'कार्य की सिद्धि तक' विश्राम नहीं लेना चाहिए तभी लक्ष्य प्राप्ति सम्भव है।

10.1 प्रस्तावना

कालिदास ने कुमारसंभवम् के पंचम सर्ग में वंशस्य छन्द का प्रयोग किया है। इस सर्ग में कवि ने पार्वती द्वारा शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए जो तप किया गया उसका वर्णन किया है।

प्रथम श्लोक के माध्यम से कवि बताते हैं कि जब पार्वती शिव को कामदेव को अपनी क्रोधाग्नि से भस्म करते हुए देखती है तो उनके मन में उत्पन्न अभिलाषा जो कि सौंदर्य द्वारा शिव प्राप्ति थी वह नष्ट हो गई, अतः पार्वती ने अपने सौंदर्य की निन्दा की क्योंकि पार्वती का सौंदर्य उनके प्रिय शिव को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका तब पार्वती ने समाधि का सहारा (आश्रय) लिया और तपस्या द्वारा अपने सौंदर्य को सफल बनाने की इच्छा की, क्योंकि वह जानती थी कि उस प्रकार का प्रेमी व वैसा (शिव जैसा) पति दोनों बिना तपस्या के प्राप्त नहीं किया जा सकता।

माता मेना के विभिन्न प्रकार से समझाने के बाद भी पार्वती ने अपना निर्णय नहीं बदला और वह अटल रही। इसके बाद पार्वती ने अपनी प्रिय और विश्वसनीय सखी के माध्यम से अपने पिता हिमालय से तपस्या के लिए वन में रहने की आज्ञा मांगी। अपने पिता हिमालय की आज्ञा पाकर पार्वती ने अपनी तपस्या के लिए प्रस्थान किया तथा तपस्या के लिए उचित स्थान चुना। पार्वती ने अपनी तपस्या के लिए एक ऐसे शिखर को चुना जो मोरों से युक्त था, इस स्थान पर हिंसक जंतु नहीं रहते थे इसलिए यह स्थान तपस्या की दृष्टि से उत्तम था अथवा यह स्थल तयस्वी जनों से युक्त था। इसी कारण पार्वती ने अपनी तपस्या के लिए इस शिखर को चुना जो कि बाद में उन्हीं के नाम (गौरी शिखर) के नाम से संसार में प्रसिद्ध हो गया।

उस शिव की समाधि को पार्वती ने अपनी कठोर तपस्या से ऐसा छिन्न-भिन्न कर दिया कि शिव को स्वयं ही उसके पार्वती के समीप आने के लिए विवश होना पड़ा। इस प्रकार से पार्वती को शिव की प्राप्ति होती है। हमें हमेशा अपने लक्ष्य को ऊँचा रखना चाहिए तथा उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी पूरी मेहनत और श्रद्धा के साथ बिना रुके प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने से हम अपने लक्ष्य को अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे।

इस इकाई में आप पार्वती की कठोर तपस्या के वर्णन का अध्ययन करेंगे जिससे 'शिवप्राप्ति' रूपी फल प्राप्ति संभव है।

10.2 शिव प्राप्ति हेतु पार्वती तपस्या का वर्णन

विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात् ।

कुशङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः कृतोऽक्षसूत्रप्रणयी तथा करः ॥11॥

अन्वयः — तथा विसृष्टरागात् अधरात् (निवर्तितः) स्तनाङ्गरागारुणितात् कन्दुकात् निर्वर्तितः, कुशङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः करः अक्षसूत्रप्रणयी कृतः ॥11॥

प्रसंग — यहाँ कुशग्रहण तथा अक्षमालाधारण के विषय का प्रतिपादन किया जा रहा है—

अनुवाद— पार्वती अपने जिस हाथ से होठों में लाक्षा का रंग लगाया करतीं और स्तनों के अंगराग से रँगी हुआ गेंद से खेला करती थीं अब उसी हाथ से उक्त दोनों कार्य छोड़कर रुद्राक्ष की माला जपने लगीं, जिसकी अंगुलियाँ कुश उखाड़ने के कारण कटफट गई थीं ॥11॥

शब्दार्थ — **विसृष्टरागात्**— लाक्षारस द्वारा जिसका रंगना छोड़ दिया गया है ऐसा— यह अधरात् का विशेषण है। तपस्या का व्रत लेने के पश्चात् पार्वती ने अधरोष्ठ का रंगना छोड़ दिया था। **अधरात्**— नीचे के होठ से, यहाँ अधर शब्द का लक्षण शक्ति द्वारा अधर रंजन अर्थ होता है। यहाँ 'जुगुप्साविरामप्रमादार्थान्मुपसंख्यानम्' वार्तिक से अपादान में पंचमी विभक्ति हुई है। **स्तनागारुणितात्** — स्तनों पर लगे हुए अंगराग (उबटन) से लाल। **अंगरागः**— विलेपनम् शरीर में लगने वाला लेप अर्थात् उबटन। **अरुणितात्**— लाल किये हुए अथवा लालिमा से। खेलने के समय उछलती हुई गेंद पार्वती के स्तनों का स्पर्श किया करती थी, अतः स्तनों में लगे हुए अंगराग से गेंद लाल रंग की हो जाया करती थी। **कन्दुकात्** — गेंद से — अधर को रंगने के सदृश पार्वती ने गेंद खेलना त्याग दिया। **निवर्तितः** — निवृत्त हुआ, यह कर का विशेषण है।

कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः — कुश के ऊपरी भागों को काटने से घायल अंगुलियों वाला यह हाथ का विशेषण है। **परिक्षताङ्गुलिः** — घायल अंगुलियों वाला। **अक्षसूत्रप्रणयी** — रुद्राक्षों में बनी हुई माला से प्रेम करने वाला यह भी हाथ का विशेषण है। **प्रणय** — प्रेम प्रणयी प्रेमी अक्षसूत्रम् वस्तुतः पार्वती ने अधर का रंगना तथा गेंद का खेलना इन दो कार्यों को त्यागकर उसके स्थान पर कुशों का लाना तथा रुद्राक्ष माला का जाप करना इन दो कार्यों को स्वीकार कर लिया था।

समासाः— विसृष्टरागात् = विसृष्टः रागः यस्मात् सः विसृष्टरागाः (बहु०) तस्मात् विसृष्टरागात् ।

स्तनाङ्गरा गारुणितात—स्तनस्यः अङ्गरागः (ष०तत्पु०) स्तनाङ्गरागः, स्तनाङ्गरागेण अरुणितः (तृ०तत्पु०) स्तनाङ्गरागारुणितः तस्मात् ।

कुशाङ्कुरादानपरिक्षताङ्गुलिः—कुशानाम् अङ्कुराः (प०तत्पु०) कुशाङ्कुराः कुशाङ्कुराणाम् आदानम् (ष०तत्पु०) कुशाङ्कुरादां तेन परिक्षता अङ्गुलयः यस्मिन् सः कुशाङ्कुरादान परिक्षताङ्गुलिः (बहु०)

अक्षसूत्रप्रणयी —अक्षणां सूत्रम् अक्षसूत्रम् (ष०तत्पु०) अक्षसूत्रं प्रणयः अस्यास्तीति अक्षसूत्रप्रणयी ।

अलंकारः— इस पद्य में पर्याय' नामक अलङ्कार है।

महार्हशय्या परिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।

अशेत सा बाहुलतोपधायिनी निषेदुषी स्थण्डिल एव केवले ।।12।।

अन्वय— महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैः अपि या दूयते स्म सा बाहुलतोपधायिनी 'सती' केवले स्थण्डिले एव निषेदुषी सती अशेत ।।12।।

प्रसंग — व्रतों में आवश्यक भूमिशयन को बताया जा रहा है—

अनुवाद— बहुमूल्य शय्या पर करवटें बदलते समय अपने ही बालों से गिरे हुए फूलों से भी जिस पार्वती को कष्ट होता था, वही पार्वती अब केवल भूमि पर (बिना बिछौना बिछाये) अपनी बाहों की तकिया लगाकर बैठे ही बैठे सोने लगीं ।।12।।

शब्दार्थ — महार्हशय्या परिवर्तनच्युतैः अत्यधिक मूल्य वाली शय्या पर करवट बदलने से गिरे हुये। **महार्ह**— अत्यधिक मूल्य वाली (महान् अर्हः यस्या सा)। **शय्या**— बिस्तर (शय्यते अत्र इति)। **परिवर्तन** — बदलना। **च्युतैः**— गिरे हुये। **स्वकेशपुष्पैः**— अपने बालों में लगे हुये फूलों से। **दूयतेस्म** — कष्ट प्राप्त करती थी। इसका कर्ता 'या'। **बाहुलतोपधायिनी**— लता के सदृश सुकोमल अपनी भुजाओं का तकिया लगाने वाली। **उपधान** — तकिया। **केवले**— बिछोने से रहित। **स्थण्डिले**— चबूतरा अथवा साफ की गई हुई भूमि स्थण्डिल संस्कृता भूमि' (हलायुध)। **अशेत**— सोती थी या सोया करती थी। इसका कर्ता सा'। **निषेदुषी** — बैठती थी।

समासाः —महार्हशय्यापरिवर्तनच्युतैः— महार्हा चासौ शय्या (कर्म०) महार्हशय्या (कर्म०) महार्हशय्यायां परिवर्तनम् (स० तत्पु०) महार्हशय्यापरिवर्तनम् महर्हशय्या परिवर्तनेन च्युतानि (तृ० तत्पु०) तैः ।

स्वकेशपुष्पैः— स्वकेशानां पुष्पैः (ष० तत्पु०) स्वकेशपुष्पाणि, तैः ।

बाहुलतोपधायिनी—बाहुरेव लता (कर्म०) बाहुलता, बाहुलताम् उपधत्ते (उपपद तत्पु०) इति सा ।

पुनर्ग्रहीतुं नियमस्थया तया द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम् ।

लतासु तन्वीषु विलासचेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च ।।13।।

अन्वयः— नियमस्थया तया तन्वीषुलतासु विलासचेष्टितं, हरिणाङ्गनासु विलोलदृष्टं च , द्वये अपि द्वयं पुनः ग्रहीतुं निक्षेपः अर्पितम् इव ।।13।।

प्रसंग— व्रत हेतु पार्वती ने किस प्रकार अपने स्वभाविक विलास चेष्टा आदि को गिरवी रख दिया, यह बताया गया है ।

अनुवाद— व्रत धारण करने वाली पार्वती ने मानो अपनी विलास चेष्टाओं को कोमल लताओं तथा चंचल चितवन को हरिणियों के पास इसलिए धरोहर के रूप में रख दिया कि फिर प्रिय—समागम के समय उन्हें वापस लिया जा सके ।।13।।

शब्दार्थ—नियमस्थया— तपस्या सम्बन्धी नियमों का पालन करने वाली, यह तथा का विशेषण है। **विलासचेष्टितम्—** विलास (हावभाव, नाज—नखरे) की चेष्टाओं को 'यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम्। विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टदर्शनादिनाङ्क साहित्यदर्पणङ्ग **विलोलदृष्टिम्—** चञ्चल दृष्टि को। **द्वयम्—** दोनों। **तन्वीषु—** कृश, पतली (सुकोमल)। यह लतासु का विशेषण है। **हरिणाङ्गनासु—** हरिणियों में। **द्वये—** दो में। **ग्रहीतुम्—** ग्रहण अथवा स्वीकार करने के लिये (पुनः प्राप्त कर लेने के लिये)। **निक्षेप—** धरोहर, अमानत, थाती (निक्षिप्यते असौ इति निक्षेपः) **इव—** मानो यह उत्प्रेक्षावाचक अव्यय है। **अर्पितम्—** रखा गया (रख दिया)।

समासाः— नियमस्थया— नियमे तिष्ठतीति (उपपद तत्पु०) नियमस्था

विलासचेष्टितम्— विलास एवं चेष्टितम् विलासचेष्टितम् । हरिणाङ्गनासु—हरिणानाम् अङ्गनाः (प०तत्पु०) हरिणाङ्गनाः तासु विलोलदृष्टम्—विलोलं च तद् दृष्टम् (कर्म०) विलोलदृष्टम् ।

अलंकारः— उक्त पद्य में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। तप करते समय पार्वती का शरीर निश्चल तथा दृष्टि स्थिर थी। अतएव कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो पार्वती ने अपनी विलास की चेष्टा लताओं के पास तथा चंचल दृष्टि हरिणियों के पास धरोहर के रूप में रख दी थीं ।

अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्धयत् ।

गुहोऽपि येषां प्रथमाप्त जन्मनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ।।14।।

अन्वयः— सा स्वयम् एव अतन्द्रिता 'सती' वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैः व्यवर्धयत् । गुहः अपि प्रथमाप्तजन्मनां येषां पुत्रवात्सल्यं न अपाकरिष्यति ।।14।।

प्रसंग— पार्वती के तत्कालोचित मुनिव्यवहार के विषय में कहते हैं—

अनुवाद— पार्वती ने छोटे-छोटे पौधों को लगाकर अपने स्तनों जैसे घड़ों से पय (जल) पिला-पिला (सींच-सींच) कर बड़ा बनाया इसीलिए इन पहले जन्म लेने वाले पौधों के प्रति पार्वती के वात्सल्य भाव को (बाद में पैदा होने वाले) कुमार स्कन्द भी दूर न कर सके ।।14।।

शब्दार्थ –अतन्द्रिता— आलस्यविहीन होकर यह 'सा' का विशेषण है। वृक्षकान्— छोटे-छोटे पेड़ों को। घटस्तनप्रस्रवणैः— घड़े रूपी स्तनों के पानी से। प्रस्रवण—झरना बहना। स्वयमेव — अपने आप ही, स्वयं हो। इसका सम्बन्ध व्यवर्धयत् क्रिया के साथ है, किन्तु टीकाकार महिनाथ ने अतन्द्रिता के साथ सम्बन्ध जोड़ा है। व्यवर्धयत् — चढ़ाया, पालन पोषण किया गुह कार्तिकेय शिवजी के दो पुत्र थे। (1) गजानन (2) षडानन । षडानन के दो अन्य नाम कार्तिकेय और गुह भी हैं। यह देवताओं की सेना के सेनापति थे ।

समासाः— अतन्द्रिता—न तन्द्रिता (नञ् तत्पु०)

घटस्तनप्रस्रवणेः— घटौ एवं स्तनौ (कर्म०) घटस्तनौ, तयोः प्रस्रवाणिः घटस्तनप्रस्रवाणि ,तैः घटस्तनप्रस्रवणेः

प्रथमाप्तजन्मनाम् —प्रथमम् आप्तं(सुप्पा) जन्म यैस्ते तेषाम् (बहु०)

पुत्रवात्सल्यम्—पुत्रस्य वात्सल्यम् इति पुत्रवात्सल्यम् (ष०तत्पु०)।

अलङ्कारः— इसमें 'विरोध' नामक अलङ्कार है। कुछ विद्वानों ने इसमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार भी माना है।

अरण्यबीजाञ्जलि दानलालिता स्तथा च तस्यां हरिणा विश्वसुः ।

यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात् पुरः सखीनाममिमीत लोचने ॥ 15 ॥

अन्वयः— अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः हरिणा च तस्यां तथा विश्वसु यथा कुतूहलात् तदीयैः नयनैः पुरः सखीनां लोचने अमिमीत ॥ 15 ॥

प्रसंग — वनवासिनी पार्वती किस प्रकार हरिणों की भी विश्वासपात्र बन गई थी, यह कहा जा रहा है—

अनुवाद— जंगली धान के बीजों की अंजलियों से पाले पोसे गए हरिण उस पार्वती पर इतना विश्वास करते थे कि कभी-कभी उत्सुकतावश पार्वती उनके नेत्रों से अपनी सखियों के नेत्रों को नापा करती थीं (किन्तु ऐसा करने पर भी वे भागते नहीं थे) ॥ 15 ॥

टिप्पणियाँ— अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः— जंगल में उत्पन्न नीवारादि अन्नों से भरी मुट्टियों के देने से पालित। अरण्यबीज—वन में अपने आप उगने वाले नीवार आदि अन्न के दाने। विश्वसु — विश्वास करते थे। कुतूहलात् — उत्सुकतावश 'रम्यावस्तु समालोके लोलता स्यात् कुतूहलम्'। तदीयैः— उनसे (मृगों से) सम्बन्धित अथवा मृगों से यहाँ 'सह' शब्द के योग के कारण तृतीया विभक्ति हुई है। नयनैः— आँखों से। लोचने— आँखों को। पुरः— सामने, समक्ष यह अव्यय है तथा इसका सम्बन्ध अमिमीत क्रिया से है। अमिमीत— नापती थी।

समासाः— अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः अरण्यस्य बीजानि (ष०तत्पु०) अरण्यबीजानि, अरण्यबीजानाम् अञ्जलयः (ष०तत्पु०) अरण्यबीजाञ्जलयः, तेषाम् दानम् (ष०तत्पु०) अरण्यबीजाञ्जलिदानम्, अरण्यबीजाञ्जलिदानेन लालिताः (तृ० तत्पु०) अरण्यबीजाञ्जलिदानलालिताः ।

कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीमधीतिनीम् ।

दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन् न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ॥16॥

अन्वयः — कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासङ्गवतीम् अधीतिनी तां दिदृक्षवः ऋषयः अभ्युपागमन् । धर्मवृद्धेषु वयः न समीक्ष्यते ॥16॥

प्रसंग — पार्वती के तपस्वरूप अनुष्ठान के प्रभाव का अतिशय कहा जा रहा है।

अनुवाद— स्नान करने के पश्चात् पार्वती अग्नि में हवन करती और नूतन वल्कल का वस्त्र धारण करके स्तुतियों आदि का अध्ययन करने बैठ जाती थीं । उन्हें उस रूप में देखने के लिए ऋषिगण भी आते थे, क्योंकि धर्म-परायण तपस्वियों की आयु नहीं देखी जाती है ॥16॥

शब्दार्थ — **कृताभिषेकाम्**— कर लिया है स्नान जिसने उसको यहाँ स्नान से तात्पर्य त्रिकाल स्नान से है। यह प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल तीन बार किया जाता है। **हुतजातवेदसम्**— जिसने अग्नि में हवन कर लिया है। **जातवेद** — अग्नि, 'कृ पीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात' इत्यमरः। **त्वगुत्तरासङ्गवतीम्**— जिसने वल्कल (पेड़ों की छाल द्वारा निर्मित) का उत्तरीय धारण कर लिया है, उसको। **अधीतिनीम्**— वेद पाठ करने वाली। **दिदृक्षवः**— देखने के इच्छुक (अभिलाषी)। **ऋषयः** — का विशेषण है। यहाँ 'न लोकाव्ययनिष्ठा खलर्धतृणाम्' से षष्ठी का निषेध हो गया है। अतः यहाँ पर 'तस्याः दिदृक्षवः' न होकर 'तां दिदृक्षवः' ही हुआ है। **अभ्युपागमन्**— आये, पास आते थे। **धर्मवृद्धेषु** — धर्म में श्रेष्ठ लोगों में अथवा अधिक धार्मिक व्यक्तियों के बारे में। **वयः** — अवस्था आयु। यह 'वयम्' शब्द का रूप है। **न समीक्ष्यते**— नहीं देखी जाती है। अवस्था में कहीं अधिक ऋषि लोग अल्पवयस्का उस पार्वती के दर्शनों के निमित्त आया करते थे। इसमें कोई अधर्म की बात नहीं है क्योंकि पार्वती गुणों तथा धर्म की दृष्टि से उन ऋषियों की अपेक्षा कहीं अधिक आगे थी और उसका तत्कालीन चरित्र अनुकरणीय बन चुका था। जो लोग धर्म में वृद्धता को प्राप्त कर लिया करते हैं, उनकी उम्र नहीं देखी जाती। महाकवि **भवभूति** द्वारा रचित उत्तररामचरित में भी इसी भाव को व्यक्त किया गया है: "गुणाः पूजास्थान गुणिषु न च लिंगं न च वयः।

समासाः— कृताभिषेकाम् —कृतः अभिषेकः यया (बहु०) सा कृताभिषेका, ताम्।

हुतजातवेदसम्—हुतः जातवेदाः यया सा हुतजातवेदाः (बहु०) ताम् हुतजातवेदसम्

त्वगुत्तरासङ्गवतीम् —उत्तरे आसन्न्यते (उपपद तत्पु०) इति उत्तरासङ्गः सोऽस्या अस्तीति सा, त्वचा उत्तरासङ्गवती (तृ० तत्पु०) त्वगुत्तरासङ्गवती ताम्।

धर्मवृद्धेषु— धर्मेण वृद्धाः (तृ० तत्पु०) धर्मवृद्धाः तेषु।

विरोधिसत्त्वोज्झित पूर्वमत्सरं द्रुमैरभीष्टप्रसवार्चितातिथिः ।

नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं तपोवनं तच्च बभूव पावनम् ॥17॥

अन्वयः —विरोधिसत्त्वोज्झितपूर्वमत्सरं द्रुमैः अभीष्टप्रसवार्चितातिथिः नवोटजाभ्यन्तरसम्भृतानलं तच्च तपोवनं पावनं बभूव ॥17॥

प्रसंग — पार्वती को निवासस्थली बन चुकी उस वनस्थली के प्रभाव का अतिशय बताया जा रहा है।

अनुवाद— पार्वती का वह तपोवन इतना पवित्र बन गया था कि उसमें निवास करने वाले परस्पर विरोधी जीवों का शत्रुभाव मिट गया था। वहाँ के वृक्ष भी अतिथियों के

आने पर उनकी इच्छा के अनुसार फल देकर स्वागत करते थे। उसमें एक नवीन पर्णशाला के भीतर यज्ञ कुण्ड में अग्नि जलती रहती थी।।17।।

शब्दार्थ –विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरम् – विरोध-वैर, विरोधी- परस्पर विरोध रखने वाले, सत्व-प्राणी, उज्झित- त्याग दिया गया, मत्सर- शत्रुता, डाह, ईर्ष्या मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे इत्यादि इत्यमरः पूर्व-पहले की, जन्मजात यहाँ पर परस्पर वैर रखने वाले प्राणियों द्वारा अपनी जन्मजात (स्वाभाविक) शत्रुता का त्याग कर दिया गया है। तपोवन में ऋषियों के तपःप्रभाव से परस्पर विरोधी प्राणी अपने स्वभाविक वैर का त्याग कर दिया करते हैं। **दुमैः**— वृक्षों के द्वारा। **अभीष्टप्रसवार्चितातिथि**— जिस तपोवन में अभीष्ट फलों द्वारा अतिथियों का सत्कार किया जाता है। **अभीष्ट**— अभिलाषित, इच्छित। **अर्चित**— सत्कार किये गये हुए, पूजित। **नवोत्जाम्यन्तरसंभृतानलम्**— नव-नवीन। **उत्ज**—पत्तों से निर्मित कुटी, पर्णकुटी 'पर्णशालोत्जोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। **अभ्यन्तर**— अन्दर। **सम्भृत**—सञ्चित। **अनल**— अग्नि। उपर्युक्त तीनों शब्द 'वनम्' के विशेषण हैं। **तपोवनम्**—तपस्या करने का स्थल (वन)। **पावनम्**— पवित्र बभूव हो गया।

समासाः — विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरम्— विरोधिनश्च ते सत्त्वाः (कर्म०) विरोधिसत्त्वाः, तैः उज्झितः पूर्वः मत्सरः यस्मिन् (बहु०) तत् विरोधिसत्वोज्झितपूर्वमत्सरम् । अभीष्टप्रसवार्चितातिथि—अभीष्टः प्रसवैः अर्चिताः अतिथयः यस्मिन् तत् अभीष्टप्रसवार्चितातिथि

तपोवनम्—तपसः वनम् इति तपोवनम् (ष० तत्पु०)

यदा फलं पूर्वतपः समाधिना न तावता लभ्यममंस्त काङ्क्षितम् ।

तदाऽनपेक्ष्य स्वशरीरमार्दवं तपो महत्सा चरितुं प्रचक्रमे।।18।।

अन्वयः— सा यदा तावता पूर्वतपःसमाधिना काङ्क्षितं फलं लभ्यं न अमंस्त, तदा स्वशरीरमार्दवम् अनपेक्ष्य महत् तपः चरितुं प्रचक्रमे।।18।।

प्रसंग — यहाँ से पार्वती की तपस्या की पराकाष्ठा का वर्णन प्रारम्भ किया जा रहा है—

अनुवाद— जब पार्वती ने देखा कि इस प्रारम्भ किए गए तप से इच्छित फल की प्राप्ति होना सम्भव नहीं है, तब उन्होंने अपने शरीर की कोमलता का ध्यान किए बिना ही कठोर तप करना आरम्भ कर दिया।।18।।

शब्दार्थ —तावता— उतने से। यह पूर्वतपः समाधिना का विशेषण है। **पूर्वतपः समाधिना**— पहले की गई हुई तपस्या के द्वारा। **काङ्क्षितम्** —मन चाहा इच्छित अभिलाषित। पार्वती का अभीष्ट था— शिव सदृश पति तथा उनका अनन्य स्नेह प्राप्त कर लेना। **लभ्यम्** — प्राप्त करने योग्य। **न अमंस्त**— नहीं समझा नहीं माना। **तदा**— तब। **स्वशरीरमार्दवम्**— अपने शरीर की कुमारता को। **अनपेक्ष्य**— ध्यान न देकर, उपेक्षा करके। **महत्** — दुस्तर, कठिन। **चरितुम्**— करने के लिये, प्रचक्रमे—प्रारम्भ कर दिया।

समासाः— पूर्वतपःसमाधिना— तपसः समाधिः तपः समाधिः (ष०तत्पु०) पूर्ववासी तपस्समाधिः (कर्म) पूर्वतपः समाधिः तेन स्वशरीरमार्दवम् स्वस्य शरीरम् (ष०तत्पु०) स्वशरीरम् स्वशरीरस्य मार्दवम् (ष०तत्पु०)।

अनपेक्ष्य—न अपेक्ष्य (नञ्त्पु०)।

क्लमं पयो कन्दुकलीलयापि या तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत ।

ध्रुवं वपुः काञ्चनपदमनिर्मितं मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च ॥19॥

अन्वयः — या कन्दुकलीलया अपि क्लमं ययौ, तया मुनीनां चरित व्यगाह्यत ध्रुवम् अस्याः वपुः काञ्चन पदम् निर्मितम्, अत एव प्रकृत्या मृदु च ससारम् एव च ॥19॥

प्रसंग — कोमल अंगों वाली पार्वती ने स्वयं को अब घोरतप सागर में झोंक दिया। अतः उसके स्वभाव में कोमलता व कठोरतारूप दो विरोधी गुणों की स्थिति बताई जा रही है—

अनुवाद— जिस पार्वती का शरीर पहिले गेंद खेलने से भी थक जाया करता था, वही पार्वती (अत्यन्त कठोर शरीर वाले) मुनियों के समान कठोर तप करने लगीं। इससे यह प्रतीत होता है कि उनका शरीर निश्चित रूप से स्वर्ण कमल से बना हुआ था, इसीलिए उसमें कमल जैसी स्वाभाविक कोमलता और स्वर्ण जैसी स्वाभाविक कठोरता दोनों थी ॥19॥

शब्दार्थ —**कन्दुकलीलया**— गेंद खेलने से। **कन्दुक**— गेंद; **लीला**— खेल। **क्लमम्** — थकावट को ययौ किया का यह कर्म है। तथा उस (पार्वती) के द्वारा 'व्यगाह्यत' क्रिया का अनुक्त कर्ता है। **चरितम्**— आचरण, चरित्र। — यह 'व्यगाह्यत' क्रिया का उक्त कर्म है। **व्यगाह्यत** — आचरित किया गया। **ध्रुवम्** — निश्चय ही यह अव्यय है तथा उत्प्रेक्षा को सूचित करता है। **वपुः**—(पार्वती का) शरीर। **काञ्चनपदमनिर्मितम्** — सोने तथा कमल का बना हुआ अथवा स्वर्ण कमल का बना हुआ। यहाँ प्रथम अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है तथा उसकी संगति भी इस पदम् के चतुर्थ चरण के साथ ठीक बैठती है अर्थात् वह पार्वती प्रकृति (स्वभाव) से कमल सदृश कोमल तथा स्वर्ण के समान कठोर भी थी। **प्रकृत्या** —प्रकृति अर्थात् स्वभाव से। **मृदु**— कोमल। **संसारम्** — कठोर कठिन।

समासाः — कन्दुकलीलया— कन्दुकस्य लीला कन्दुकलीला (ष० तत्पु०) तथा कन्दुकलीलया ।

काञ्चनपदमनिर्मितम् —काञ्चनस्य विकारः काञ्चनं, काञ्चनं च तत्पदम् (कर्म०) काञ्चनपदम्, तेन निर्मितम्

काञ्चन पदमनिर्मितम् निर्मितम् (तृ० तत्पु०) ।

ससारम् —सारेण सहितं ससारम्

अलंकारः —उत्प्रेक्षा 'ध्रुवम्' उत्प्रेक्षावाचक शब्द है। पार्वती का शरीर सुवर्ण के समान कठोर और कमल के समान सुकोमल था। सुवर्णसदृश कठोरता से तपश्चर्या की क्षमता सम्भावित होती है।

शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा ।

विजित्य नेत्रप्रतिधातिनीं प्रभाम् अनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत ॥ 20 ॥

अन्वयः— शुचौ शुचि स्मिता सुमध्यमा ज्वलतां चतुर्णां हविर्भुजां मध्यगता 'सती' नेत्रप्रतिधातिनीं प्रभां विजित्य अनन्यदृष्टिः सती सवितारम् ऐक्षत ।

प्रसंग — ग्रीष्म ऋतु में पार्वती की तपस्या का प्रकार क्या था, यह बताते हैं।

अनुवाद- अत्यन्त निर्मल हास्य करने वाली तथा क्षीण कटि वाली पार्वती ग्रीष्म काल में चारों ओर जलती हुई अग्नि के बीच बैठकर आँखों में चकाचौंध पैदा करनेवाली सूर्य की किरणों पर विजय प्राप्त करके निर्निमेष नेत्रों से सूर्य की ओर देखती रहती थीं।

शब्दार्थ –शुचौ- ग्रीष्म ऋतु में। यह शुचि शब्द के सप्तमी विभक्ति के एकवचन का रूप है। **ज्वलताम्** – जलते हुए। यह 'हविर्भुजाम्' का विशेषण है। **चतुर्णाम्** – चारों (अग्नियों) के। **पञ्चाग्नि** – में चारों ओर आग जलाकर साधक को बीच में बैठना पड़ता है। पाँचवी अग्नि सूर्य होता है। **हविर्भुजाम्** – अग्नियों के हवन करते समय अग्नि में हविः (भूत) डाला जाया करता है, अग्नि उसे खाती है अतः अग्नि का ही नाम हविर्भुज भी अथवा हुतभुज है। मध्यगता बीच में स्थित मध्य शब्द 'हविर्भुज' से सापेक्ष है, अतः गता के साथ इसका समास नहीं होना चाहिये था। किन्तु 'सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः इस नियम के आधार पर समास किया गया है। **मध्यगता-** मध्यमता (द्वितीया तत्पुरुष)। **शुचिस्मिता-** स्वच्छ मुस्कराहट वाली। **शुचि** – पवित्र शुद्ध शोभन। **स्मित** – मुस्कराहट पार्वती को कठोर तप का कोई कष्ट नहीं था, अतएव निरन्तर प्रसन्नचित्त ही रहा करती थी।

समासाः – शुचिस्मिता – शुचि स्मितं यस्याः सा० (बहु०)

सुमध्यमा-शोभनं मध्यम यस्याः (बहु०) सा।

मध्यगता –मध्यं गता (द्वि० तत्पु०)।

नेत्रप्रतिधातिनीम् –नेत्रे प्रतिहन्ति तच्छीला नेत्रप्रतिधातिनी , ताम् नेत्र प्रतिधातिनीम्

अनन्यदृष्टिः – न विद्यते अन्यत्र दृष्टिः यस्याः सा अनन्यदृष्टिः ।

बोध / अभ्यास प्रश्न

बोध प्रश्न

क) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए—

1. कुमारसंभवम् की कृति है।
2. कुमारसंभवम् एक..... है।
3. कुमारसंभवम् में की तपस्या का वर्णन है।
4. पार्वती की पुत्री थी ।

अभ्यास प्रश्न

कुमारसंभव के पाँचवें सर्ग के आधार पर पार्वती की विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।

10.3 सारांश

- प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि सुकोमल पार्वती किस प्रकार कठिन तपस्या कर रही थी ।
- आपने जाना कि पार्वती ने अपने सुकोमल शरीर की ओर ध्यान न देकर केवल लक्ष्य प्राप्ति की ओर ही ध्यान दिया ।

- लक्ष्य निश्चित होने पर लक्ष्य प्राप्ति की ओर अनवरत प्रयास अवश्य ही सफलता दिलाते हैं ,हमें धैर्यपूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिए ,जब तक फल प्राप्ति न हो।

10.4 शब्दावली

निर्मल— स्वच्छ ,पवित्र

ध्रुवम् —निश्चित ही

पराकाष्ठा —चरम सीमा, उच्चता

वैर — दुश्मनी, शत्रुता

10.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. कुमारसम्भवम् (पंचम सर्ग),व्याख्याकार डा. विश्वनाथ शर्मा
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास — डा मधु सत्यदेव
3. संस्कृत कवि दर्शन — भोला शंकर व्यास
4. कुमारसम्भवम् (1-5 सर्ग),व्याख्याकार डा. श्रीकृष्ण त्रिपाठी,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली

बोध / अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) बोध प्रश्नों के उत्तर

1. कालिदास
2. महाकाव्य
3. पार्वती
4. हिमालय

अभ्यास प्रश्न के उत्तर

अभ्यास प्रश्न के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखे —

